

भारत का सीमांत

डा० जगदीशचन्द्र खन्, एम० ए० पी-एच० डी०
प्रधान प्राचार्य हिन्दी विभाग
छमनारामण रुद्रया कानेर बम्बई

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२६ ए, बन्दरलोक बम्बई नगर विस्ती
बिजली केन्द्र नई सड़क विस्ती

⊕ लेखक

प्रथम संस्करण
अक्टूबर, १९६१

मूल्य
चार रुपये

मुद्रक
युवांतर प्रिन्स मोरीयेट, वि

प्रस्तावना

२० अक्टूबर, १९६२ में भारत पर संघर्ष चीनी आक्रमण होने के बाद भारत के सीमान्त की घोर दुनिया का ध्यान आकषिप्त हुआ है।

हिमालय पर्वत को हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में भगामिदाय कहकर एक पवित्र तीर्थ माना गया है, और हमारे कवियों ने अपने गीतों में 'संतरी' कहकर बड़े गौरव के साथ इसका उल्लेख किया है—एसा संतरी को बर्त में बड़ा हुआ घाँबी और तुडाल की परबाह न करता हुआ दिन पत हमारे देश का पहरा बैठा है। लेकिन दुर्भाग्य से आज हम अपने घापको बहसी हुई परिस्थितियों में पाते हैं।

सीमांत में रहने वाले आदिवासियों का जीवन हमारे ही जैसा है। उनका रहन-सहन शिथिल-रिवाज बली-बारी मजद-फूँक बंतर-मंतर, नीत-नृत्य लोकगीत और लोककथा आदि हम लोगों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। सन् १९४७ में भारत को आजादी मिलने के पश्चात्, इन जन-जातियों के विकास और उन्नति के लिए भारत सरकार ने बहुत कुछ किया है। लेकिन अधिकतर लोगों की यही राय है कि सीमांत में जाय कर उपुसी (लेज्य) क्षेत्र में भारी परिवर्तन बाँझनीय नहीं है। कारण कि संकटकालीन स्थिति में कोई भी बड़ी तबदीली बहाँ की स्थिति में गड़बड़ी पैदा कर सकती है जिससे प्रतिरक्षा सम्बन्धी समस्याएँ बढ़ जाने की सम्भावना है। इस संकल्प में भारत के प्रधान मंत्री पंडित नेहरू ने २९ मार्च १९६१ को लोकसभा में बक्तव्य देते हुए कहा है कि यदि भारत के अन्य भागों से अनियंत्रित रूप से लोग बड़ी तादाद में उपुसी क्षेत्र में प्रवेश करेंगे तो उपुसी और छप भारत के बीच आभात्मक एकता कायम करने में रुकावट पैदा हो सकती है। इस क्षण में बड़े पैमाने पर बस्तियाँ बसाने के मार्ग में सबसे बड़ी धमकिया यह है कि यहाँ की जमीन की निरक्षयता का कोई लेना-बोधा नहीं। यहाँ सामुदायिक आचार पर ही यहाँ के

रहने वालों का कम्बु है और यहाँ की जन-जातियों को घासका है कि यदि बाहर के लोग उपूरी में आकर बस जायेंगे तो फिर उनका अपनी ही भूमि पर अधिकार न रहेगा ।

चीनी साम्राज्य के संबंध में सारे तथ्यों को सामने रखते हुए वस्तु-वासी दृष्टि से विचार करने का अब समय आ गया है, और इसके लिए बम्भीर अध्ययन और विचार की आवश्यकता है ।

एक समय या जब 'हिन्दी चीनी भाई भाई' के नारे बुसन्द किये जाते थे । भारत का अपने पुराने पड़ोसी चीन के प्रति सदा से सहानुभूति पूर्ण रह रहा है । जब चीन की जनता ने मित्रता का हाथ बढ़ाया तो भारत की जनता ने उसे प्रेमबिभोर होकर अपने पसे लगा लिया । लेकिन चीन के आक्रमणात्मक व्यवहार के बाद परिस्थितियाँ बदल गई हैं । भारतीय जनता के हृदय में आक्रोश की भावना फैल गई है । चीनी आक्रमण से हमें नज़ररत है और उसके लिए हम चीनी सरकार को दोषी ठहराते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम चीनी जनता को भी उसमें सपेट करें । चीनी आक्रमण के दो महीने पश्चात् २३ दिसम्बर, १९६२ को संतिनिकेठन में चीना मन्त्र का सम्बोधन करते हुए पंडित नेहरू ने कहा था— 'भारतीय जनता तथा भारत सरकार चीन की सरकार की अतिपय बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष कर रही है, चीनी जनता तथा चीनी संस्कृति से हमारा कोई संघर्ष नहीं ।' दरमसल इस समय अधिकधिक आवश्यकता इस बात की है कि चीनी हमले के खिलाफ हम जनमत को इकट्ठापूर्वक संगठित कर राष्ट्रीय भारतीय फौज का निर्माण करें ।

घाघा है इस पुस्तक को पढ़कर भारत का सीमांत और उस पर होने वाला चीनी आक्रमण के संबंध में पर्याप्त जानकारी मिल सकेगी । इस दृष्टि से हिन्दी में अपने हीय की यह पहली पुस्तक होगी ।

विषय क्रम

१ भारत का पूर्वी राज्य—असम	१
२ भारत का सीमा प्रदेश—असुसु (नेपथ)	७
३ नेपथ निवासियों के जीवन की म्मक	२८
४ सीमा प्रदेश की जातियाँ	४२
५. काश्मीर का मुक रम्य प्रदेश—सहाल	६७
६ मैकमोइन रेखा	७९
७. हुनिया की स्रत तिम्वत	८३
८. चीनी सेनाओं का घाकमण	१०८
९. समझौते की बातचीत	११९

चित्र

- | | | |
|----|--|-----------|
| १ | असम प्रवेश | (मामखिन्) |
| २ | उपूषी प्रवेश | |
| ३ | कामेय सीमा प्रवेश | " |
| ४ | नेत्र की आठियाँ | |
| ५ | सहाय | |
| ६ | मैकमोहन रेखा | " |
| ७ | विष्णु | " |
| ८ | बैठ का बना पुस | " |
| ९ | बेठी का निरसा डंग | |
| १० | धियान विधीजन के एक पाँव में बुनाई धीर बैठ का काम | |
| ११ | आफला आठि के सोपों का एक घर | |
| १२ | बलि देने के पूर्व देवी-देवताओं का आह्वान | |
| १३ | कामेय की आदिवासी आठियाँ | |
| १४ | आका पति अपनी मित्रि पत्नी के साथ | |
| १५ | आफला मुबठियाँ | |
| १६ | सुबानधिरौ के आदिवासीओं की बैठनूप | |
| १७ | पैलंग आठि के सोव मृत्य-मुद्रा में | |
| १८ | धियान विधीजन का एक दृश्य | |
| १९ | एक पदम मुबक | |
| २० | मिहमी दम्पति | |
| २१ | आदिवासी की कन्न | |
| २२ | सहाय के कतिपय निर्वाचित मर-जारी | |
| २३ | विष्णु का पौठसा मठ | |

महावीर अधिकारी को

आमार

इस पुस्तक के कुछ लेख 'नव भारत टाइम्स' बम्बई के रविवारीय संस्करण में प्रकाशित हुए थे जिन्हें संशोधन और परिवर्धन के साथ आमारपूर्वक यहाँ रिया गया है।

पुस्तक को तिलते समय सासकर पंडेजी और कुछ हिन्दी की पुस्तकें से सहायता ली गई है, एतदर्थ लेखक उन सब पुस्तकों के लेखकों का ध्याती है। इसके सिवाय विशासस्थित नेत्र के रिसर्च विभाग के कन्वरर रिसर्च आफिसर, तथा बंबईस्थित भारत सरकार के प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो के डिप्युटी प्रिंसिपल इन्फॉर्मेशन आफिसर के प्रति भी लेखक आभार प्रकषित करता है जिन्होंने कृपा करके आवश्यक चित्र और मानचित्र प्रेष कर सहायता की।

—लेखक

भारत का उत्तर-पूर्वी राज्य—असम

जादू-टोने का प्रवेश

असम प्राचीन काल में प्राग्योतिप और मध्ययुग में कामरूप के नाम से प्रसिद्ध रहा है। प्राचीन शास्त्रों में असम की महिमाओं के रूप-सौंदर्य की प्रशंसा की गयी है। कहते हैं कि वे बड़ी जादूगरनी जाती थीं तथा पुरुष को यकरा या मेमना बनाकर छोड़ देती थीं। कामरूप में कभी केवल स्त्रियों का ही राज्य था। एक बार कोई संघाल वहाँ पहुँच गया और वहाँ की स्त्रियों ने उसे पकड़कर ५ वर्ष तक रखे रखा। दिन में उसे वे वाँस की एक टोकरी में छिपा देतीं और रात को जादू की शिक्षा देतीं। जब उन्होंने संघाल को अपनी मला म दीक्षित कर लिया तो उसे वाँस बनाकर उसके देश को उड़ा दिया।

असम की मिरि नाम की पहाड़ी जाति की लोककथाओं में भी इस प्रकार की एक कहानी आती है। पर्वतों से भ्राम्छा वित्त मियुमाम नाम के देश में केवल स्त्रियाँ ही रहती थीं। भ्रुसा भटका कोई पुरुष यदि वहाँ पहुँच जाता तो वहाँ की स्त्रियों में बड़ा म्झाड़ा होता। जो स्त्री ताकतवर होती, वह उसे अपने पास ले जाती। उसे वह बड़े सम्मानपूर्वक रखती और स्वादिष्ट भोजन सिखाती। बहुत समय के पश्चात् जब वह पुरुष वहाँ



भारत का उत्तर-पूर्वी प्रदेश असम

से सौटसा तो उसे कीमती तखवार और माभाएँ देकर धिवा किया जाता जिससे कि उसके देश के भग्य पुरुष भी आकृष्ट हो कर वहाँ भान के लिए सामायित हों ।

बौद्धकाल में यह स्थान तांत्रिकों का प्रबन्ध था, इसलिए भी यहाँ जादू-टोम का खोर खूना स्वाभाविक है । यहाँ के कामाख्या मंदिर में बस महाविद्याओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं । ७वीं सदी में चीनी यात्री हुएनत्सांग यहाँ आया था । उसने असम की हवा, बिर्वसी भाप, घातक सर्प और संहारक बनस्पति

को मृत्यु का कारण बताया है।

भौगोलिक स्थिति

असम भारत के एकदम उत्तर-पूर्व में बसा हुआ है। इस उत्तर-पूर्वी प्रदेश में असम के साथ उषुमी (मेका), नागालैंड मनीपुर और त्रिपुरा भी शामिल हैं। असम अपने विमानान जगलों के कारण कुमोद्य है। यहाँ के पहाड़ों में कीमती पत्थर और चाँदी पायी जाती है, और स्वच्छ जल से पूर्ण अनगिनत नदियाँ यहाँ बहती हैं जिनमें सोने के कण पाये गये हैं, और जिनके बलस्थल पर सोहे के पुस बने हुए हैं। दुनिया की सुप्रसिद्ध ब्रह्मपुत्र नदी को मयंकुल बाढ़ से यहाँ लाखों-करोड़ों रुपये का नुकसान हो जाता है। नदी का पाठ अत्यन्त विद्याल है, इसकी धाराएँ बीच-बीच में अलग हो जाती हैं, लेकिन धारा आकर तुमूस-नाद करती हुई फिर एक साथ बहने लगती हैं। नदी के किनारों पर दसदस ही बलदल दील पड़ती है, कुछ दूर बसने पर समतल मैदान प्राप्त हैं जिनमें चावल की खेती होती है। बीच-बीच में सड़े हुए लाड़ के पेड़ प्राकृतिक सौंदर्य को द्विगुणित कर देते हैं। चाय के बगीचे यहाँ की विशेषता हैं। पहाड़ों की झरबाँ जमीन में चाय पदा होती है। चाय के बगीचों में यहाँ लगभग छ लाख मजदूर काम करते हैं। असम राज्य की चायिक आय लगभग साढ़े तीन अरब है, जिसका अधिकांश भाग इंसण्ड आदि विदेशों में बपने वाली चाय की बिक्री से ही प्राप्त होता है। इसके अलावा रेशम कपास, कॉफी और शक्कर भी यहाँ बड़ी मात्रा में पैदा होती है। कोयला और

ऐस जीवन की दो आवश्यक वस्तुएँ हैं और ये दोनों यहाँ बहुतायत से होती हैं ।

ब्रह्मपुत्र घाटी ५०० मील लम्बी और ५० मील चौड़ी है । इसके उत्तर में हिमालय पहाड़ हैं और उत्तर-पूर्व में यह चीन के सीमाप्रान्त तक फैली हुई है । इसके दक्षिण में गारो, खासी और जयन्तिया नाम की पहाड़ियाँ हैं जहाँ घोर बर्फा होती रहती है । ये पहाड़ियाँ असम को बर्मा से अलग करती हैं । १९४७ ई में हिन्दुस्तान का बँटवारा होने के बाद बीच में पूर्वी पाकिस्तान आ जाने से भौगोलिक दृष्टि से, हिन्दुस्तान से यह राज्य अलग पड़ गया है । चौबीस मील लम्बी एक सँभरी दहलीज इसे पश्चिमी बंगाल से मिलाती है । इससे असम राज्य की यातायात-व्यवस्था और उसके बनिज-व्यापार पर बाकी असर पड़ा है । पहले यहाँ के व्यापारी सिलहट और मैमनसिंह के पासपास के प्रदेशों के साथ व्यापार किया करते थे, लेकिन अब ये दोनों स्थान पाकिस्तान में चले गये हैं ।

असम की राजधानी दिमांग

असम राज्य की जनसंख्या लगभग सवा करोड़ है । नागासेड को मिला कर इसमें १२ जिले हैं । नागासेड, जिसमें खेतसांग का प्रदेश भी शामिल है अभी कुछ समय से स्वायत्त शासन करने वाला प्रदेश बना दिया गया है, यह असम के राज्यपाल के अधीन है ।

दिमांग असम की राजधानी है जो खासी-जयन्तिया पहाड़ियों पर प्रायः चार हजार फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ

है। यहीं से सारे राज्य की शासन-व्यवस्था चलती है। लेकिन रेल की सुविधा न होने के कारण यह स्थान अधिक प्रकाश में न आ सका। गोहाटी तेजपुर, डिब्रूगढ़ और सिलचर यहाँ के महत्वपूर्ण कस्बे हैं। बाँस, सागवान, कटहल सुपारी और घाम के पेड़ जहाँ-तहाँ नजर आते हैं। तेजपुर की गाँवें ऋद में छोटी और कम दूष देने वाली होती हैं, हाँ बकरे काफी बड़े हाते हैं। उपुसी प्रदेश में प्रवेश करने के लिए तेजपुर से जाना पड़ता है।

मुघलों का आक्रमण

घावलाह औरंगजेब सन् १६५८ में दिल्ली के तख्त पर बैठा तब सन् १६६२ में उसने बंगाल के गवर्नर मीरजुमसा को असम फतह करने भेजा। मीरजुमसा शाहजुदीन और मुस्ला दरवेश नाम के दो विद्वानों को भी अपने साथ ले गया था। इन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य से रमणीय असम के इन पहाड़ी प्रदेशों का जा समीच वणन किया है, उससे यहाँ की भौगोलिक और सामाजिक स्थिति का परिचय मिलता है। मीरजुमसा गरगाँव पहुँचकर नी महीने रहा। उस समय असम में राजा जयध्वज (१६४८-१६६३ ई०) राज्य करता था। जयध्वज नागा-हिंस्र में जा छिपा लेकिन मौका पाते ही घर्षा श्त्रु भाने पर उभन मुस्लिम फौज पर घावा बोल दिया। दुर्गम पहाड़ी प्रान्तों को यात्राएँ कर-करके मुस्लिम सनाएँ बक गयी थी रसद की भी कमी थी, इसलिए मीरजुमसा न ग्रहोम क राजा स सधि कर ली और बहु बंगाल सौट गया। कुछ दिनों बाद

घोरगजेव ने राजा मानसिंह के पुत्र रामसिंह को भ्रम पर बढ़ाई करने भेजा लेकिन वह भी यहाँ के मौसम से घबराकर वापस भा गया ।

ग्रहोम वंश का राज्य

भ्रम में ग्रहोम राजाघ्रा का राज्य सन् १३२४ से लगाकर १८३५ तक यानी घग्गेजों के हिन्दुस्तान आने तक बसा था । सन् १६८२ में राजा गदाधरसिंह (१६८१-१६९६ ई०) ने यहाँ राज्य किया और फिर उसके बाद मुगल बादशाहों की कोई बढ़ाई नहीं हुई । गदाधरसिंह बड़ा कठोर सासक था जिन लोगों से वह खतरा समझता उन्हें भयंकर से भयकर दण्ड देने से नहीं चूकता था ।

जोरहाट ग्रहोम राजाघों की अन्तिम राजधानी थी । इस समय पहाड़ियों में रहने वाली जन-जातियों के अनेक उपद्रव हुआ करते थे, उन्हें बसा में बरने के लिए अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करना पड़ता था । ये लोग पहाड़ों से मैदानों में आकर मार काट और झूटपाट करते तथा आदिमियों और बच्चों को उठा ले जाते । जब भीरभ्रमसा यहाँ आया तब सुवानसिंह के खोर दार डाकसों के उपद्रव जारी थे ग्रहोम राज्य पर वे दखल करना चाहते थे । इन लोगों को बच में करना उतना ही मुश्किल था जितना किस्ती हाथों को फूँटने के बिस में घुसेड़ देना । राजा उदयाधिस्य सिंह ने उन्हें दंडित करने का प्रयत्न किया लेकिन उसे सफलता न मिली । भारत में घग्गेजों के पंचापण करने से पहले मैफा में रहने वाली जन-जातियों का यही इतिहास है ।

असम की बीर जातियाँ

इतिहास बताता है कि कितनी ही जातियों ने असम की भूमि में प्रवेश किया लेकिन कोई स्थायी विदेशी जाति यहाँ पर न आ सकी। यहाँ की रणवीरुती जातियों ने निरन्तर उनका मुकाबला कर उन्हें परास्त किया। परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी सीमांत की भाँति भारत का उत्तर-पूर्वी सीमांत आक्रमणकारियों के लिए नहीं खुल सका।

भारत का सीमा प्रदेश—उपूसी (नेफा)

नेफा सम्बन्धी जानकारी

जब से चीनी सना का हिन्दुस्तान की सीमा पर आक्रमण हुआ तब से दुनिया की नजर नेफा पर लगी हुई है। दुर्भाग्य से ३०,५०० वर्गमील में फैले हुए लगभग ४ लाख की आबादी वाले इस प्रदेश में कौन-सी जातियाँ निवास करती हैं, कब से निवास करती हैं क्या उनकी संस्कृति है, और चीनी सरकार कब से इस प्रदेश पर अपने अधिकार का दावा करने लगी है आदि बातों के सम्बन्ध में हमें पर्याप्त जानकारी नहीं है। बहुत-से लोग तो नागा-हिल्स को ही नेफा समझते हैं जबकि तिराप हलाकें के निवासी नागा लोग नेफा की जमसब्या के केबल पाँचवें हिस्से क बराबर हैं।

दरअसल ब्रिटिश सरकार ने सन् १८७३ में ही 'भारत रिक पब्लिश अधिनियम' (इनर लाइन रेगुलेशन) पास करके इस प्रदेश को अलग कर दिया था जिससे कि बाहर के साग यहाँ प्रवेश न कर सकें। भारत के यात्रियों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गए थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रथम गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसी (१८४८-१८५६ ई०) ने कहा था—
 "इन अंगमी जातियों और इनकी बजर पहलियों को लेकर हमें क्या करना है? इनका तो राजनीतिक पहिष्कार ही

करना चाहिए।" ऐसी हालत में नेफा के सम्बन्ध में कम जानकारी होना आवश्यक की बात नहीं है।

मुल्ता दरवेश का घासों-वेखा वर्णन

प्रायः से ३०० वर्ष पहले हिरात के मुल्ता दरवेश ने उरुसी प्रदेश का घासों-वेखा बड़ा ही समीप चित्रण किया है। वे लिखते हैं—“यह दुनिया ही दूसरी है दुनिया से भ्रमण किस्म के भाग यहाँ रहते हैं उनके रस्म-रिवाज बिल्कुल दूसरे हैं। यहाँ की जमीन हमारे देश जैसी नहीं यहाँ का आसमान हमारे आसमान जैसा नहीं। आसमान में बादलों के बिना ही यहाँ वर्षा होने लगती है, मिट्टी के बिना ही जमीन से हरी हरी घास के झुंड फूटने लगते हैं। यह प्रदेश सारी दुनिया से न्यारा है। दूसरी जगह जब सारी ऋतुएँ समाप्त हो जाती हैं तब ऋतुओं का यहाँ आरम्भ होता है। हमारे देश में जब शीत ऋतु आती है तब यहाँ ग्रीष्म ऋतु रहती है, और हमारे यहाँ जब ग्रीष्म ऋतु आती है तब यहाँ सर्दी पड़ती है। यहाँ के मार्ग इतने भयंकर और बीहड़ हैं कि मानो हमें मृत्यु की ही ओर लीज कर ले जायेंगे। यहाँ का विस्तार जीवन के लिए सहारक है माखूम होता है जैसे विनाश का कोई निर्जन नगर हो। यहाँ की पहाड़ियों की आच्छादित करने वाली वन-पर्वत नासमझ पुरुषों के हृदय की भाँति हिंसा से भरी पूरी है। नदियाँ यहाँ की सीमा विहीन हैं और समझदार लोगों के मस्तिष्क की भाँति उनका फँसाव है।”

हिम से आच्छादित पर्वत मासाधों नदी-नासों, बीहड़



उत्तरी प्रदेश

उत्तर प्रदेश

जंगलों और हरी मरी वन-पक्षियों से घाबित, प्राकृतिक सौन्दर्य से वेष्टित नेफा का रम्य प्रदेश वैधानिक रूप से असम का एक हिस्सा है, और भारत सरकार के वक्तव्य के अनुसार जब यह पर्याप्त रूप से विकास की अवस्था प्राप्त कर लेगा, तब उसे असम में ही मिला दिया जाएगा। बाबकस नेफा का पासम भारत सरकार के विदेश मन्त्रालय की ओर से, असम के राज्यपाल की सहायता से किया जाता है। राज्यपाल भारत के राष्ट्रपति के एजेंट हैं। यहाँ का शासन-सूत्र राज्यपाल के सलाहकार के हाथ में है और विभाग में बैठ कर वे अपना शासन चलाते हैं।

भौगोलिक स्थिति

नेफा के पश्चिम में भूटान, उत्तर-पूर्व में तिब्बत और सिक्किम, तथा दक्षिण-पूर्व में बर्मा की सीमाएँ हैं। ये सीमाएँ तीनों ओर से दुर्गम पहाड़ियों से घिरी हुई हैं, इसलिए भूटान, तिब्बत, सिक्किम और बर्मा में रहने वाले लोगों से नेफा की जातियों का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्तों से यह प्रदेश बिरा हुआ है, इसलिए हवाई-जहाज को नीचे उतरने की जगह पाना भी यहाँ मुश्किल है। ऐसी हासत में, यातायात के साधनों के अभाव में, जकरत पड़ने पर सेनाओं का विना बिना कोई आवश्यक सामान भेजना हो तो उसे ऊपर से हवाई-जहाज से गिराने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। यहाँ के जन-आतीय मामलों में भारत सरकार के सलाहकार डाक्टर बैरियर एसविन ने सिखा

है कि यदि आप इस क्षेत्र में एक महीना घूम फिरें तो ऐसा लगेगा कि ६० हजार फुट ऊँचे एवरेस्ट की चोटी से भी ऊपर चढ़ गए हैं।

पाँच भाग

नेफा घाटबन्स पाँच भागों में विभक्त है—कामेंग (२,००० वर्गमील), सुबानसिरि (७,६५० वर्गमील), सियांग (८,६६२ वर्गमील), सोहित (५,८०० वर्गमील) और तिराप (२,६५७ वर्गमील)। ये पाँचों पहाड़ी प्रदेश ब्रह्मपुत्र की घसम की घाटी की घोहों की नाल की भाँति घरे हुए हैं। कामेंग घसम के पश्चिम में सुबानसिरि उत्तर-पश्चिम में, सियांग उत्तर में, सोहित उत्तर-पूर्व में और तिराप पूर्व में है। इन प्रदेशों में अनेक जन-जातियाँ निवास करती हैं जो भिन्न भिन्न रीति रिवाजों को मानती हैं, तिब्बत-बर्मी परिवार की विविध भाषाएँ और बोसियाँ बोलती हैं, तथा अपनी सामाजिक आदतों, पोशाकों आदि में एक-दूसरे से भिन्न हैं। सत्रफल की दृष्टि से सियांग सबसे बड़ा है। इसके मध्य भाग में घनी घावाही है। उत्तरी सुबानसिरि और सोहित में नदियाँ की घाटियों में दूर-दूर बसे गाँवों में ही लोग दिखायी पड़ते हैं। सुबानसिरि में २०० इंच वर्षा होती है। कामेंग अपनी सी-सा पहाड़ी के लिए प्रसिद्ध है। यह पहाड़ी लगभग १४००० फुट ऊँची है। हिमालय की चोटी से जब यहाँ हडिडियाँ को भेदने वाली बर्फ़ीली हवा चलती है तब लगता है कि कोई धाकू से बदन के टुकड़े कर रहा है। इतनी ऊँचाई पर पहुँच कर यदि कोई किसी

प्रकार का जरा भी उद्यम करे तो फेफड़े फटने लगते हैं। और तो क्या, हवा पतली होने के कारण हेसिकाप्टर तक को उड़ने में कठिनाई होती है। तेजपुर से यह स्थान ७० मील दूर, और लगभग ३ मील ऊँचा है। अच्छी भीष द्वारा यहाँ तक पहुँचने में १८ घंटे लग जाते हैं। झाड़-फुसार्कों घट्टानों और अन्तहीन दरों से वृष कर यदि सकुशल पहुँच गये तो समझिये कि दूसरा जन्म हुआ है।

सोहित और कामेग की प्राचीनता

सोहित और कामेग अत्यन्त प्राचीन प्रदेश हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार सान्तनु ऋषि अपनी पत्नी के साथ सोहित सरोवर के किनारे रहते थे। यहाँ उनके एक पुत्र हुआ। इस पुत्र को जिस स्थान पर रखा गया वह ब्रह्मकुण्ड या देवपाणि कहलाया और यही फिर सोहित नदी का उद्गम स्थान हुआ।

सोहित राजा भीष्मक की राजधानी थी, और भीष्मक की कन्या राजकुमारी रुक्मिणी कृष्ण को दी गयी थी। वसे रुक्मिणी का विवाह क्षिप्रुपाल से होना निश्चित हुआ था, लेकिन रुक्मिणी कृष्ण से प्रेम करती थी। रुक्मिणी का संदेश पाकर कृष्ण अपनी प्रेमिका को अपने साथ लेकर चले गये थे।

यहाँ रामेश्वरी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है, जो कभी बहुत बड़ा तीर्थस्थान रहा होगा। कहते हैं कि यहाँ परशुराम का प्रागमम हुआ था और अपने फरसे से पहाड़ी को काट कर उन्होंने रास्ता बनाया था। कामेग में भरेली नदी के तट पर अमुकपांग किले के ध्वसावशेष नजर आते हैं। यह किला

भावासी लोगों के पूर्वज बाणासुर के पोसे भसुक का निवास स्थान बताया जाता है। बाणासुर को तेजपुर में कृष्ण ने युद्ध में पराजित किया था। उपा बाणासुर की स्ववती कन्या थी। एक बार, रात्रि के समय उसने स्वप्न देखा कि कोई सुन्दर राजकुमार उसके पास आया है। अगले दिन उसकी सखी चित्रसेखा न एक-से एक सुन्दर राजकुमारों के चित्र बना कर उपा के सामने उपस्थित किये। अन्त में जब कृष्ण के सुपुत्र अनिरुद्ध का चित्र बनाया गया तब राजकुमारी ने उसे पहचान लिया और कहा कि वस, यही मेरा राजकुमार है। अनिरुद्ध को किसी प्रकार द्वारका से तेजपुर लाया गया लेकिन कन्याओं के अन्त-पुर में एक परदेशी की उपस्थिति कैसे सहन की जा सकती थी! राज-कमचारियों ने अनिरुद्ध को पकड़ कर जेल में डाल दिया। कृष्ण के पास जब यह समाचार पहुँचा तब वे यहाँ उपस्थित हुए। कृष्ण और बाणासुर में युद्ध हुआ, जिसमें बाणासुर भी हार हुई। उपा और अनिरुद्ध एक-दूसरे को पाकर बहुत प्रसन्न हुए।

तेजपुर का अर्थ है 'खून का नगर'। हो सकता है कि इस प्रकार के और भी खूनी युद्ध वहाँ हुए हों और तब से यह नगर तेजपुर नाम से पुकारा जाने लगा हो।

नेपा पर अंग्रेजों का अधिकार

अंग्रेज हमारे देश में आये थे तिजारत करने, लेकिन उनके मन में साम्राज्य बनाने की लिप्सा जाग उठी। उधर असम के अहोम राजाओं के आपसी सझाई ऋगड़ों के कारण असम पर

मियों का अधिकार हो गया और सन् १८२५ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी कूटनीति से अरुणोत्तर पर कब्जा कर लिया। उसके बाद, सन् १८०६ में, यानदेवो की सभि के मुताबिक बर्मा के राजा ने असम को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। लेकिन पूरेन्द्रसिंह अहोम राजाओं की गद्दी का हकदार था इसलिए उसे अरुण असम का राजा बना दिया गया। शर्त यह थी कि ५०,००० रुपया वार्षिक ईस्ट इंडिया कम्पनी को उसे देना पड़ेगा। लेकिन शर्त पूरी न हो सकी राजा को गद्दी से उतार दिया गया और सन् १८३८ में असम का शासन अंग्रेजों के हाथ में पहुँच गया।

असम पहले ही छोटी-छोटी रियासतों में बँटा हुआ था इसलिए अंग्रेजों के आने से पहाड़ों में रहने वाली आदिवासी जातियों में अरुणा का भाव बढ़ गया। यात्रियों का आना जाना कम हो गया और ब्रह्मकुण्ड आदि तीर्थों के दर्शन के लिए जाने वालों की संख्या घट गई।

युरोपियन अफसरों और मिशनरियों का दौरा

ईस्ट इंडिया कम्पनी के संरक्षण में अनेक युरोपियन अन्वेषकों, अफसरों, मिशनरियों, सिपाहियों और व्यापारियों ने इस प्रदेश का दौरा कर अपने असीम साहस का परिचय दिया। इनमें सपिटनेट विलकोक्स विलियम ग्रिफेथ मेजर बटलर कैप्टन डास्टन, कैप्टन कूपर और फावर क्रिक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सैपिटनेट विलकोक्स असम का 'सर्वे' करने आये और

१८२५ १८२८ ई० तक वे अपना कार्य करते रहे। १८२६ ई० में उन्होंने मिशमी क्षेत्र का दौरा किया। तत्पश्चात् वनस्पतिविज्ञान के विशेषज्ञ विनियम प्रिफेस १८३२ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी में सहायक सज्जन के पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने खासकर चाय की पदावार बढ़ाने के उद्देश्य से असम का दौरा किया। १८३६ ई० में उन्होंने मिशमी पहाड़ी की यात्रा की। अपनी इस यात्रा में उन्हें असह्य सकसोफे सहन करनी पड़ीं और केवल ३५ वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हो गया। मेजर बटलर १८३७ ई० में यहाँ आये। कमबत्ता से सँक्या तक उन्होंने ६५ दिन की लम्बी यात्रा की। पहले, ३७ दिन के अन्दर वे असम की राजधानी गोहाटी पहुँचे फिर वहाँ से नाव द्वारा ब्रह्मपुत्र की यात्रा कर सँक्या में उतरे। यहाँ पर चाय बागान की रक्षा में समग्न रहते हुए घास-फूस की बनी भोपड़ी में वे अपना जीवनयापन करने लगे। एक बार एक भयंकर अजगर उनकी भोपड़ी में घुस आया, जिसे देखते ही उनके होश-हवास गुम हो गये। ब्रह्मपुत्र की वाढ़ से तो न जाने कितनी बार उनकी भोपड़ी बह गई! इस प्रकार जीवन के २० वर्ष उन्हें और सकट में गुजारने पड़े। ऐसी विपन्न परिस्थिति में उनका असम को 'अंगमी असम्य और विदेशी भूमि' कह कर उत्सहित करना अधिक अवस्थामाविक नहीं लगता। कैप्टन ई० टी० डाल्टन ने १८५५ ई० में असम के गवर्नर जनरल के एजेन्ट के प्रधान सहायक के पद पर कार्य किया। इस काम में धबोर के मेम्बू स्थान का उन्होंने दौरा किया। कैप्टन डाल्टन अपनी

'ब्रिटिश इण्डिया पब्लिशिंग कंपनी ऑफ बंगाल' नाम की सौमपूर्ण पुस्तक के लिए प्रसिद्ध हैं। इसके प्रकाशन के लिए सरकार का धोर से दस हजार रुपये दिये गये थे। एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की धोर से पुस्तक का प्रकाशन हुआ। कैप्टन कूपर एक अत्यन्त साहसी और धर्मंगोल व्यक्ति थे। इन्स्टन के वे परम मित्र थे और १८५२ ई० में वे हिन्दुस्तान आये थे। कूपर धुरु से ही भ्रमण क सोकीन थे, और वदा विदेश की उन्होंने यात्रा की थी। १८६८ ई० में चीन से तिर्यक्त होकर उन्होंने पैदल हिन्दुस्तान पहुँचने का प्रयास किया, लेकिन चीनी सरकार ने उन्हें जान की इजाजत नहीं दी। उधर से जब वे सफल न हुए तो एक वर्ष बाद उन्होंने हिन्दुस्तान होकर पैदल ही चीन पहुँचने की कोशिश की। लेकिन धव की बार फिर उन्हें धीप से ही सीट घाना पड़ा। १८७६ ई० में वे पॉलिटेक्स एजेंट बनकर हिन्दुस्तान आये, और दुर्भाग्य से उनके ही किसी सिपाही ने उनसे वदसा सेन के लिए उनकी हत्या कर दी। जे० एरोस ग्रे धाम के वगीधों के मानिक थे। असम के धाम के व्यापार को वे सीमाप्रान्त के बाहर फैलाना चाहते थे। १८९१ ई० में भारत की ब्रिटिश सरकार ने इस सम्बन्ध में सत्ताह-मधवरा करने के लिए उन्हें धार्मन्त्रित किया था।

इसके सिवाय सफिटनेट रोसेट, काठ, बुद्धीप, हरमन धादि धनेक युरोपियन धफसर इस क्षेत्र में धाते-धाते रहे। इनमें फ्रेंसीसी मिधानरी फादर त्रिक का नाम खासतौर से उल्लेखनीय है। १८५० ई० में वे दक्षिणी तिर्यक्ती मिधम के

बड़ पादरी बनकर हिन्दुस्तान घायम । पहले वे गोहाटी पहुँचे और फिर ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे-किनारे मिछमी पहाड़ियों में से गुजर कर उन्होंने सिव्यत-यात्रा की ठानी । अपना पवित्र प्राप्त धपनी बांसुरी और दबाइयो की पेटी लेकर वे पदल ही चल पड़े । संख्या पहुँचने पर उन्हें एक पंटी सरदार मिछा और उसकी सहायता से वे मिजुस पहाड़ में से घागे बढ़ते गए । फावर क्रिक की रोमांचकारी यात्रा का बणन उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

मेरे मारे शरीर को उन्होंने जंगली पत्तियों से ढक दिया और वे गाने-बजाने लगे । भूत प्रेत के वैशाखिक प्रभाव से वे मेरी रक्षा करना चाहते थे । मुझे जंगल से से जाया गया । मैं बाणों से विभी राक्षस-मूर्तियों से घामित तोरण ७ दोहन गुहरा । यह मेरे शरीर से भूत प्रेत भड़कने का प्रयत्न था । स्त्री, पुरुष और बाल-बच्चे सभी मुझे देखने के लिए एकत्रित थे । भावनी ही नहीं भौं भौं करते कुत्त भी भीड़ की घोमा बढ़ा रहे थे । मैं घागे घागे चल रहा था और भीड़ मेरे पीछे । मुझे एक ऐसे स्थान पर ले जाया गया जहाँ यह सोच मरी वाट जोह रहे थे । हाँस पोमाहस से गुँज रहा था और शक्ति के लिए उपस्थित पतिवियों का घट्टहास कानों को बधिर बना रहा था । सब क सब उत्कण्ठा से मुझे देखने के लिए झल्लाते थे । इस प्रकार मारी रात बीत गई । अगले दिन गाँव की सभा हुई । एक बड़ भवन के बीचों-बीच गाँव के मुखिया बैठे थे । पास का एक निरस्त्राण मेरे सिंग पर बांध दिया गया, उसे भास रंग से रंगी हुए बकरे के बालों से

सजाया गया फिर मेरे मस्तक पर मुघर के दो दाँत रखे गये । उत्पत्त्यात्, गाँव के मुखियाओं की घोषणा सुनाई पड़ी—'सब ठीक है, तुम्हें हमारे देश में प्रवेश करने की अनुमति है ।'

फादर त्रिफ एक धार्मिक व्यक्ति ही नहीं, एक कुशल डाक्टर भी थे । उनकी चिकित्सा से जब रोगी स्वास्थ्य प्राप्त करने लगे तो गाँव के लोग बड़े प्रसन्न हुए और सब जगह उनकी प्रशंसा ही प्रशंसा सुनायी देने लगी । उन्हें घर बनवा देने का आश्वासन दिया गया और लोग उनसे वहीं रहने का अनुरोध करने लगे ।

इस बीच में, कुछ दिनों बाद, एक अफवाह सुनाई दी कि फादर त्रिफ भयंकरों के भेदिया हैं और वे ऐसे बसवान हैं कि उनकी इच्छा-शक्ति से स्वादिष्ट भोजन भी विष में परिणत हो जाता है । यह सुनकर गाँव भर के लोग उनसे असन्तुष्ट रहने लगे । उनसे तिन्वत् से बसे जाने के लिए कहा गया ।

सयोग की बात, इन्हीं दिनों गाँव में घाग भग गई । सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि गाँव के लोग पानी से घाग बुझाने के बजाय तमबारों के हाथ दिखा रहे थे जिससे कि घाग के प्रेतों को मेस्तनावूद कर दिया जाये । पास में लड़ी हुई स्त्रियों अपन पतिदेवों के साहसपूर्ण पुत्रपार्य की सराहना कर रही थीं । दो घरों को छोड़कर सब घर अल दर झाक हो गये । जैसे हुए घरों के चारों धार दाढ़ बनाकर उन पर घाग के प्रेत को भगाने के चित्र बना दिये गये थे । भोग साब रहे थे, प्रेत कहीं छिपकर सो नहीं बैठ गया । इसलिए गाँव-

बाजे के साथ, अस्त्र-शस्त्र के पराक्रम द्वारा, उसे मार भयाने का प्रयत्न किया जा रहा था।

घस्तु, फादर जिक को गाँव छोड़कर बसे जाने का हुक्म मिला गया। खैर हुई कि वे जिन्या लौट धाये। गाँव के जिन रोगियों को उन्होंने प्रच्छा किया था उनकी यह बुझा ही समझनी चाहिए।

फादर जिक तिब्बत से सीट तो धाये लेकिन अपनी यात्रा से वे असन्तुष्ट ही रहे। १८५४ ई० में फिर से उन्होंने फादर बुरी को साम लेकर, तिब्बत-भाषा का बुद्ध संकल्प किया। उन्होंने मार्ग-द्वयंक के रूप में मिशमी जाति का एक साधमी लिया। लेकिन मौसम अराध था इसलिए वह दूर तक न जाकर रास्ते से ही वापस लौट गया। उसके बाद फादर जिक ने कैस नाम के एक मिशमी मुखिया को पो घु दर्रे पर भेजने को कहा और वहाँ पहुँचा देने पर उसे छपटा और बन्दूक इनाम में देने का वादा किया। लेकिन घोड़े से कोई बूझा ही व्यक्ति इस इनाम को भे उड़ा। फादर जिक को इस रहस्य का पता न लगा और इसीलिए कैस क घर जाने की उन्होंने कोई अश्रत नहीं समझी। यह देखकर कैस को बहुत क्रोध धाया और पो घु दर्रे पर पहुँचने के पहले ही उमने दोनों पादरियों को जान से मार डाला।

भारत के साधारण राजाओं की गियासतों को ईस्ट-इण्डिया कंपनी के राज्य में मिताने बासा भाई इतहीही इस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर जनरल था। वह भसा कैसे चुप बैठ सकता था? उसने सैपिटनैट एडेन को सेना की एक टुकड़ी

के साथ फौरन कूच करने का आदेश दिया। आठ दिन तक यह टुकड़ी पहाड़ों और वीहड़ जगहों में कूच करती हुई आगे बढ़ी। खतरनाक नदियों के घात के बने हुए पुलों को इस टुकड़ी के सिपाहियों ने मूल भूखण्ड पार किया और पहाड़ों को साँपते समय कड़ाके की सर्तों में घटों तक उन्हें बिना भन्त और पानी के रहना पड़ा। लेकिन सेना अपने अभिमान में सफल हो गयी। कैस को पकड़कर बिदुगढ़ साया गया और उसे फाँसी पर सटका दिया गया।

नेफा-निवासियों के प्रति अप्रेहों को भावना

ऐसी एक नहीं और भी हत्याएँ इस प्रदेश में हुईं। लेकिन उसका मुख्य कारण यही था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यहाँ की जन-जातियों की परिस्थितियों और समस्याओं पर कभी गभीरता से विचार नहीं किया। उल्टे, जिन अधिकारियों ने इस प्रदेश का दौरा किया उन्होंने यहाँ के आदिवासियों को असभ्य बंदर, जगती हत्यारे, डाकू, विदवासघाती क्रूर, डण्डे की मार से बश में आने वाले मूख और गन्दे आदि कहकर ही डिगारा पीटा। इसहीसे स्वयं इन जातियों को 'सरदख कहा करता था। अप्रेत्र रमणियों के पतिदरों को जब कभी किसी अभियान पर जाना पड़ता तो वे कह उठतीं कि यह कितनी सरदर्दी है कि उन्हें बूतों के समान जड़ और अजीब आदतों वाली महामूर्ख जङ्गली जातियों के साथ सहने जान पड़ रहा है।

ऐसी हासत में नेफा निवासियों की अप्रेहों के प्रति

भावना कैसे रह सकती थी ? सोहित क्षेत्र में बसने वाले सैन्टी सोंगों की धनुक के साइसेंस चीन लिये गये नतीजा यह हुआ कि उन्होंने सादिया की ब्रिटिश दुर्ग रक्षक सेना पर घावा बोम दिया और सैफ्टिनेंट ह्लाइट की हत्या कर डाली । सियांग की घाति जाति सिंगवो और नागा आदि जातियों के भी उपद्रव होते रहे जिनके कारण भद्रजों को काफी क्षति उठानी पड़ी । लेकिन प्रश्न यही था कि इन सांगों को कैसे वश में किया जाये । गिरफ्तार करके बन्दी बनाये हुए सांगों का छुड़ाने के लिए, हत्या का बदला लेने के लिए, और अपराधियों को कड़ा से कड़ा दण्ड देने के लिए सेना की टुकड़ियाँ भेजी गयीं, लेकिन सफलता न मिली ।

असम का पुनर्गठन

इस समय असम का फिर से संगठित करने की योजना बनी । डिब्रोंग, दुब्रोंग डिहोंग और साहित घाटियों को तिजारात के लिए जोम दिया गया तथा बंगाल का राज्यपाल बसकले में बैठकर असम का शासन चलाते लगे । डिहोंग और खासकर सोहित घाटी की जातियाँ अपराजों के बहुत शिक्काफ थीं, फिर भी सोहित क्षेत्र की घबोर और मिसामी पहाड़ियों में प्रवेश करके अजेय अफसरों ने अपम अस्वय साहस का परिचय दिया । इस योजना के परिणामस्वरूप बनिज व्यापार को प्रोत्साहित किया गया तथा उदलगुड़ी, सादिया और डोइमेरा आदि स्थानों में मेलों की व्यवस्था की गयी ताकि पहाड़ी जातियाँ सरकार के प्रति बकावार रहती हुई रखर,

मोम, कस्तूरी हाथीदांत, चनाई आदि अपना सामान बेच सकें, तथा चमड़ा नमक सोहा, बरतम चांदी के गहने और अफीम आदि आवश्यक वस्तुएँ खरीद सकें। लेकिन यह योजना भी निष्पन्न कायकारी न हुई।

एसी दशा में सिपाहियों की टुकड़ियाँ भेजने, रास्तों को रोकने, सतरनाक स्थानों पर मिनिटरी की चौकियाँ कायम करने और आदिवासी जातियों के नेताओं को 'पोस' देकर खुश करने के बावजूद जब कुछ न हुआ, तो नेफा को असम से पृथक् कर इस प्रदेस को हिन्दुस्तान के नक्शे से ही हटा दिया गया। और उत्तरी असम में एक पंक्ति बना दी गयी जिसके आगे केवल 'पोस' युवा व्यक्ति ही जा सकते थे। वैसे सन् १८७३ का 'भौतिक पंक्ति अधिनियम' (इनर लाइन रेगुलेशन) पास करने का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश प्रजा के आदिवासियों के साथ व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना था। लखीमपुर में खर का सट्टा करने वाले व्यापारियों के साथ सरकारी कर्मचारियों का झगड़ा हो गया था। इसके सिवाय कुछ व्यापारी निश्चित क्षेत्रों की सीमा के आगे जाय के बगिचे लगाना चाहते थे, जिसके कारण सरकार का आदिवासियों के साथ बहुत झगड़ करने पड़े थे। फिर, सबसे मुख्य बात यह थी कि इस बजर प्रदेस से अप्रेशों को आर्थिक लाभ की विशेष सम्भावना नहीं थी। यद्यपि यहाँ पर कस्तूरी खर, मोम, हाथीदांत चमड़ा, बँत, ऊन आदि की पैदावार होती थी, लेकिन तराई के व्यापारी इन चीजों को सस्ते दामों में खरीदकर ले जाते, और सरकार टकस से वसित रह जाती। इस समय असम को एक प्रांत का

दर्जा देकर उसे गोमपाड़ा कायरूप, डरांग, नवगोंग, सखीमपुर और सिवसागर नाम के छह जिलों में बाँट दिया गया।

लेकिन इस प्रकार कब तक काम चल सकता था? सन् १८८० में सीमाप्रांत भूमि अधिनियम (फ्रंटियरट्रिबट रेगुलेशन) जारी किया गया और नेफा की देखभाल के लिए सखीमपुर डरांग और डिब्रूगढ़ में पॉलिटिकल अफसरों की नियुक्ति हुई। सन् १८८२ में जे० एफ० नीधम सादिया में अडिस्ट्रेट पॉलिटिकल अफसर के पद पर नियुक्त हुए जिससे कि आदिवासी जातियों की राजनीतिक समस्या और उनकी शक्तियों का अध्ययन कर उनके साथ संपर्क स्थापित किया जा सक। नीधम इस पद पर सन् १९०५ तक रहे, और इसमें सन्देह नहीं कि २७ वर्ष के इस सम्वे अन्तराम में उन्होंने यहाँ की जातियों की भाषा आदि का अध्ययन किया और इन लोगों के साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित किये। इन जातियों की भाषाओं का व्याकरण भी उन्होंने लिखा।

कुछ वर्षों के बाद सन् १९१० में स्थाया पर चीतियों का आक्रमण हुआ तो ब्रिटिश सरकार देखती रह गई और तब स वह नेफा की उत्तरी पहाड़ियों में दिसपस्पी दिखाने लगी। नतीजा यह हुआ कि सोहित, सिबांग और डिरांग दुर्गों में सरकारी चौकियाँ कायम हो गयीं और एक बार फिर सनेफा हिंदुस्तान के राजनीतिक नक्शे में जमक उठा। धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकार और आदिवासियों के सम्बन्ध सुधरने लगे। लेकिन इस समय सादिया के विनियमसन और प्रगोरसन नाम के पॉलिटिकल अफसरों की हत्या कर दी गयी। फिरसे वही भय

घौर भासंका का वातावरण ! खैर, मुघार का काम भागे बढ़ता गया घौर सन् १९११ घौर १९१३ के बीच में पहली बार इस प्रदेश का विस्तृत 'सर्वे' हुआ घौर पहाड़ी प्रदेशों में अनेक सड़कें घौर पुर्वों का निर्माण किया गया । असम के राज्यपाल के मातहत सोहित घौर सिमांग की घाटियों म असम राइफल की बोकिया कायम की गयीं, तथा भारत के घैतिक विभवत भारत क सीमाप्रांत तक घाटियों का पहरा देने लग ।

नेफा को अस परिषदी घौर पूर्वी क्षेत्रों में बाँट दिया गया घौर यहाँ पॉसिटिकल अफसर नियुक्त कर दिये गये । भागे असकर सन् १९१४ में इस प्रदेश को तीन भागों में बाँटा गया (क) मध्य घौर पूर्वी क्षेत्र , उत्तर-पूव सीमाप्रांत क्षेत्र में असोर, मिरि घौर मिरिस जातियों के पहाड़ी इलाका को, (ख) पश्चिमी क्षेत्र , उत्तर-पूव सीमाप्रांत भूखण्ड में मोनपा, धाका घौर डाफला जातियों तथा मिरि घौर असोर जातिया क कुछ हिस्सों के पहाड़ी इलाकों को, तथा (ग) जलौमपुर सीमाप्रांत क्षेत्र में नेफा के बाकी प्रदेश का घासित किया गया । सन् १९१९ में पहले दो भागों को सादिया सीमाप्रांत क्षेत्र घौर तीसरे भाग को बालिपाड़ा सीमाप्रांत क्षेत्र में बिभक्त कर दिया गया । सन् १९२१ में इन प्रदेशों का 'पिछड़े हुए प्रदेश' घोषित किया गया । तत्पश्चात् भारत सरकार का १९३५ का ऐक्ट पास होने पर इन्हें 'बजित' प्रदेश करार देकर असम के राज्य पाल का इन पर एकमात्र अधिकार स्थापित कर दिया गया । सन् १९४२ में सादिया सीमाप्रांत क्षेत्र में से तिराप को असग कर दिया, तथा १९४६ में बालिपाड़ा को सी-मा सब-एजेन्सी

श्रीर सुबानसिरि जत्रों में बाँट दिया। लेकिन इतनी दौड़भूप करने पर भी 'आन्तरिक पक्ति' बदस्तूर कायम रही। अंग्रेज सरकार नहीं चाहती थी कि दूरदर्शी इस पक्कत प्रदेश में राजनीति की हवा पहुँचे। फिर अंग्रेज अफसरों का कथन था कि इस प्रदेश के निवासी प्रकृति की मोद में 'घाराम' से रह रहे हैं, उन्हें किस बात की फिक्र? सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ तो नेफा को 'साही उपनिवेश' (जाउन बालोनी) बनाने रखने की बात ब्रिटिश सरकार का धोर से उपस्थित की गयी लेकिन अंग्रेजों की एक न बसी। भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के साथ ही नेफा की जनजातियों को भी स्वतन्त्रता मिली और उनकी सुधी का ठिकाना न रहा।

नेफा में नव जीवन का संसार

स्वतन्त्रता के बाद नेफा-निवासियों के हित में अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की गयी। तब से अब तक इस प्रदेश में कई करोड़ रुपये खर्च करने सड़कों और पुलों का निर्माण किया जा चुका है, बसानिक तरीकों से खेतों में अधिक धान उपजान तथा स्वास्थ्य-सुधार और शिक्षा का प्रचार करने के लिए भारत-सरकार की धोर से काफी माता में धन का व्यय किया जा रहा है।

आभासी क बाद सन् १९४८ में सादिया प्रदेश में से तिराप को निकालकर जो हिस्सा बाकी बचा उस अखीर और मिथामी पहाड़ियों नामक दो भागों में बाँट दिया गया। पहले नागा हिस्स पर डिप्टी कमिस्सर् का शासन था लेकिन

१९५१ में इसे पृथक् जिला बना दिया , और १९५३ में इस स्वतंत्रता सीमाप्राप्त जिला बना जाने लगा। तत्पश्चात् १९५४ में समूचे नेफा को मये मिर म कामेंग, मुधानसिरी, सियांग, सोहित, तिराप और स्वतंत्रता इन छ प्रदेशों में बाँटा गया। १९५६ में स्वतंत्रता को नागा हिन्दु जिले के साथ मिला दिया और आज़कल यह प्रदेश नागा हिन्दु स्वतंत्रता प्रदेश के नाम से कहा जाता है।

अपेक्षों के शासनकाल में नेफा में जो भय और आतंक की परिस्थितियाँ बनी रहती थीं, वे अब बदल चुकी हैं। यहाँ की आदिवासी जातियों के जीवन में आशा और उत्साह का संचार हो रहा है। इसीलिए भारत सरकार को उनका हर प्रकार का सहयोग मिल रहा है। भारत के प्रधानमंत्री पण्डित नेहरू का कहना ठीक ही है कि यदि हम आदिवासी जातियों के मिष्ट भाकर उनके साथ भाई-बारे का यत्न करें तभी उनका और हमारा कल्याण हो सकता है और हम आत्मसन्तुष्टि का सामना कर सकते हैं।

नेफा निवासियों के जीवन की झलक

नेफा में रहने वाले आदिवासी बड़े ही शान्त स्वभाव के सच्चे ईमानदार परिश्रमी और विनोदप्रिय होते हैं। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त घणवा पंजाब आदि प्रदेशों में रहने वाली जातियों की भाँति अस्वी से क्षुब्ध हो जाने वाले कसह-प्रिय घणवा तुनुक-मिजाप आप उन्हें नहीं पायेंगे। इसका प्रमुख कारण है उनका सघनमय कठोर जीवन तथा जीवन की अनिश्चित परिस्थितियाँ। पने अंगलों से आच्छादित और नदी-नालों से भरपूर इस पहाड़ी प्रदेश के कुछ इलाकों में तो घन घोर वर्षा होती रहती है जिससे यहाँ के निवासी स्वच्छन्दतापूर्वक घूम-फिर नहीं सकते अपने घर के बोनों में सिमटकर ही उन्हें बठे रहना पड़ता है। घायहवा में इसनी नमी आ जाती है कि कोई चीज बहुत दिना तक नहीं टिकती इसलिए घर की मामूली चीजों को भी दाँस की टोकरियों में बाँधकर सुरक्षित रखना पड़ता है। नमी से बचने के लिए यहाँ के निवासी जमीन से ऊपर दाँसों और लकड़ियों के घर बनाते हैं। य लकड़ियाँ छीजती रहती हैं जिससे उनका भुँधा घर में भर जाता है और इससे बपड़ों आदि की अमक नष्ट हो जाती है।

इ और भूकम्प

नेफा के रम्य प्रदेश में कसकस करती हुई संकड़ों

नदियाँ बढ़ती हैं और जब इनमें बाढ़ आती है तो नदियों की घाटियों में बसे हुए गाँव-के-गाँव बह जाते हैं। सन् १९५४ में लोहित नदी में बाढ़ आने के कारण सादिया नामक कस्बे का नाम निस्तान तक बाकी न रहा, यद्यपि यहाँ के वीर और साहसी स्त्री-पुरुषों ने कुछ दिन बाद ही इसे फिर से प्रावाद कर लिया। भूकम्प के प्रकोप से भी यहाँ के निवासी बच नहीं पाते। सन् १९५० में लोहित द्विबोजन में जो भीषण भूकम्प हुआ उससे सारे इसाके का नक्का ही बदल गया। ऐसी जोर-जोर की धाबाब आने लगी मानो लोहे की मोटी बंदरों को लोहे के डबों से पीटा जा रहा है। चट्टानें पहाड़ों से टूट-टूटकर गिरने लगीं और सब जगह धूस-ही-धूल हा गयी। भासपास की जमीन गिरने से घाटिया के रास्ते बन्द हो गये और नदियों में ऐसी भयंकर बाढ़ आई कि स्वच्छ जलभारा के स्थान पर उनमें भूरे रंग की दलदल-ही-दलदल बहने लगी, तथा नदियाँ चट्टानों और टिम्बर के वृक्षा से भर गयीं। कृत्तों का भीकना बन्द हो गया और नक्षत्र-भासिका छिन्न भिन्न पत्थों की उड़ी हुई धूल से धीविहीन दिखाई पड़ने लगी। सन् १९६१ और १९५७ में भी भयंकर भूकम्पों के बचक यहाँ लगे थे।

शीत का प्रकोप

पहाड़ी इसाका होने के कारण शीत का प्रकोप भी यहाँ कुछ कम कष्टप्रद नहीं है। सर्दियों से बचने के लिए बरों में प्राण बचाये रखना आवश्यक है। प्रायः भूतप्रेतों

को भगामे में भी महायज्ञ होती है और उसके भ्रुं से मच्छर आदि विप्ले जन्तु मर जाते हैं । अत्यधिक शीत के कारण कितनी ही आतिथी हर साल अपने स्थानों को छोड़कर तराइयों में जाकर रहने लगती हैं । गाँव में प्रायः सय जाने का डर सदा बना रहता है ।

विद्यावान् जंगल

यहाँ के वन और जंगल इतने घने हैं कि हबारों एकड़ जमीन में सूर्य को किरणें तक नहीं पहुँच पाती तथा दुर्गम होने के कारण पक्षियों का कलरब तक सुनाई नहीं देता । एक और विद्यावान् जंगल है तो दूसरी ओर धनदेवता विराजमान हैं । दोनों ही आदिवासियों के धाराध्यदेव हैं । इन विद्यावान् जंगलों में गवोग्मत्त हाथी निर्भय होकर बिचरण करते हैं । डर रहता है कि कहीं ये उन्नतकाय मूलपंक्तिओं की शीतल छाया में सुखपूर्वक अपने घरों का खेत हुए मजगरीयों के स्तूप शरीर को अपनी के पाट जैसे अपने बड़े-बड़े पाँवा से न कृपण दें । शीता सुपर धन्वर हरिण, अमरी गाय साँप, छिन्नकमी और विवेक कीड़-मकोड़ों आदि भी यहाँ भरमार रहती है ।

बीहड़ रास्ते

मार्ग यहाँ के अत्यन्त बीहड़ और दुर्गम है । ऊबड़ धाबड़ रास्तों में अपने पसले बम पूलने लगता है, और यदि पहाड़ पर चढ़ने का अभ्यास न हो तो सिर में अन्दर

माने लगता है। रास्ते दसदस से मरे रहते हैं, इसलिये घुटनों तक के घुट जूते पहने बिना चलना असम्भव है। टट्टू की सवारी प्रसवसा बहुत सहायक होती है, लेकिन टट्टू को भी घटाना की कोर पर पाँव रख रखकर यही सावधानी से कदम बढ़ाने पड़ते हैं। मिट्टी इतनी चिकनी होती है कि जीप के पहिये तक रपटते हैं और यदि ग्राइवर सतकृता से काम न ले तो फिर अन्तहीन दरों की ही धरण में बियाम करना पड़े। कुछ पहाड़ों प्रदल १४००० फुट से भी अधिक ऊँचे हैं, जहाँ साँस मना भी मुश्किल हो जाना है, यहाँ तक कि हवा पठली होने का कारण हवाई-अहात्र भी कठिनाई से उड़ पाता है। और कितनी ही बार नमक आदि आवश्यक खाद्य सामग्री पहुँचाने के लिए हवाई-अहात्रों के बिना काम चलता नहीं।

रस्तों और बतों के पुन

दुनिया के इस 'गूड़ प्रदल' में दुर्गम नदी-नालों की कमी नहीं। इन नदियों का पार करने के लिए खवदार के वृक्षा मोटे-मोटे रस्तों और बतों का लम्बे पुन बनाये जाते हैं। पुन बनाने के लिए रस्ते का दो छोरों को नदी के पार-पार बड़े हुए वृगों या घट्टानों से कसकर बाँध दिया जाता है। फिर इस रस्त में बतों के घेरे बनाये जाते हैं। नदी के उस पार जान जाने के हाथों, पाँवों, और कमर में बमब की मट्टियाँ कस दी जाती हैं और वह सफस के तारों से बनी बुड़ियों के इन बतों में बन्दर की तरह मटककर अपने प्राणको फँसा मता है, तथा हाथों और पैरों से जोर लगा-लगा-

को भगाने में भी सहामक होती है और उसके ध्रुव से मच्छर आदि विपत्ते जन्तु मर जाते हैं। अत्यधिक शीत के कारण किशमी हो जाती है हर साल अपने स्थानों को छोड़कर तरा इर्यों में आकर रहने लगती है। गाँव में प्राण सग जाने का डर सदा बना रहता है।

बियाबान जंगल

यहाँ के जन और अगल इतने घने हैं कि हज़ारों एकड़ जमीन में सूर्य की किरणें तक नहीं पहुँच पाती तथा दुर्गम होने के कारण पक्षियों का कमरक तक मुनाई नहीं देता। एक और बियाबानकाय मयाधिराज पड़े हैं तो दूसरी और वनवेष्टता बिराजमान है। दोनों ही आदिवासियों के धाराध्यदेव हैं। इन बियाबान जंगलों में मदनमत्त हाथी निर्मय होकर बिचरण करते हैं। डर रहता है कि वहाँ से उन्नतकाय युद्धपक्षियों की शीतल छाया में सुन्नपूर्वक अपने अडों को सते हुए अजगरों के स्मूत शरीर को, चकरी के पाट जैसे अपने बड़े-बड़े पाँवा से न कुचल दें। शीता, सुभर बन्दर, हरिन, चमरी गाम साँप, छिरकली और विपत्ते कीड़े-मकोड़ों आदि की भी यहाँ मरमार रहती है।

बीहड़ रास्ते

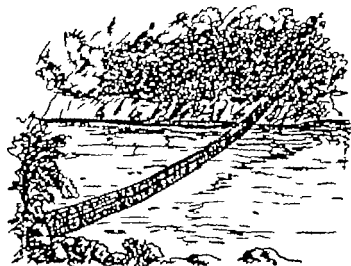
मार्ग यहाँ के अत्यन्त बीहड़ और दुर्गम है। ऊबड़ खाबड़ रास्तों में चलते चलते दम फूसने लगता है, और यदि पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास न हो तो सिर में चक्कर

धाने सगठा है। रास्ते दलदल स मरे रहते हैं, इसलिये घुटनों तक के बूट जूते पहने बिना चलना असंभव है। टट्टू की सवारी असबलता बहुत सहायक होती है लेकिन टट्टू को भी घट्टानों की कोर पर पाँव रख-रखकर धड़ी सावधानी स बरदम बड़ाने पड़ते हैं। मिट्टी इतनी चिकनी होती है कि जीप के पहिये तक रपटने हैं और यदि ठाइवर सतकता से काम न स छो फिर अन्तहीन दरों की ही धारण में विश्राम करना पड़े। कुछ पहाड़ी प्रवेग १४ ००० फुट से भी अधिक ऊँचे हैं, जहाँ सांस सेना भी मुश्किल हो जाता है, यहाँ तक कि हवा पतमी होने के कारण हवाई-जहाज भी कठिनाई से उड़ पाता है। और किस्तानी ही दार नमक आदि आषश्यक लाघ सामग्री पहुँचाने के लिए हवाई-जहाजों के बिना काम चलता नहीं।

रस्तों और घेतों के पुस

दुनिया के इस 'भूढ़ प्रवेग' में दुर्गम नदी-नालों की कमी नहीं। इन नदियों को पार करने के लिए देबदारु के वृक्षों मोटे-मोटे रस्तों और घेतों स सम्वे पुस बनाये जाते हैं। पुस बनाने के लिए रस्से के दो छारों को नदी स पार-पार सड़े हुए वृक्षों या घट्टानों से कसकर बाँध दिया जाता है। फिर इस रस्से में घेतों के घेरे बनाये जाते हैं। नन्ी के उस पार जाने वाले यात्री के हाथों, पाँवों, और कमर में बमड़ की पट्टियाँ कस दी जाती हैं और वह सकस के तारा से दली बुड़ियों के इन घेरों में बन्दर की तरह सटककर अपने आपको फँसा सता है, तथा हाथों और पैरोंसे जोर सगा-सगा

कर रस्सों की महामत्ता से धागे की धोर खिसकता जाता है। जरूरत पडने पर पासतू जानवर भीर भारी सामान आदि भी इसी तरीके से उस पार ले जाया जाता है। रस्सों के इन पुसों को पार करना कोई साधारण काम नहीं उम्हें देखते ही रूह काँपने लगती है। बेंत का घेरा कहीं सीब में ही घटक गया ता। इन पुसों का बाँधना भी अत्यन्त भ्रम-साध्य है और जान की जोखिम उठाकर ही यह कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। कितनी ही बार नदियों में बाढ़ आने के कारण



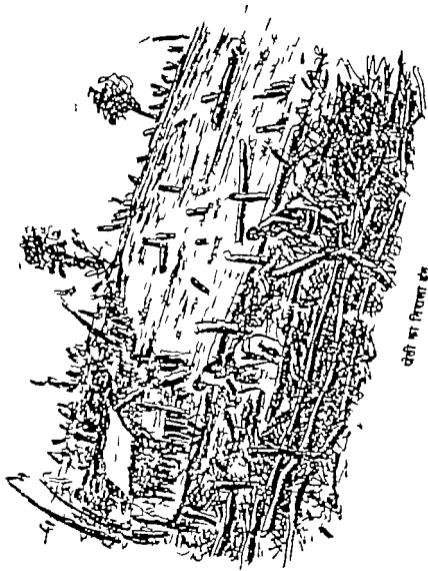
बेंत का बना एक पुस

ये पुस बह जाते हैं भीर करी करामी मेहनत मिट्टी में मिल जाती है।

पहाड़ियों के ऊपर घर

स्वास्थ्य की दृष्टि से नदियों की घाटियाँ सुखदायक नहीं होतीं। मक्खी, मच्छर आदि विप्ले जन्तुओं का प्रकोप सदा बना रहता है जिसके कारण मलेरिया आदि रोगों से पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए घाटिवासी आतियाँ इन घाटियों से हटकर, दूर पहाड़ियों के ऊपर अपने घर बनाकर रहती हैं। यहाँ उन्हें पीने के लिए पानी और मोजन बनाने के लिए ईंधन आदि का बहुत कष्ट होता है। दोनों ही जीवन के लिए आवश्यक हैं और इन चीजों को उन्हें दूर से ढोकर लाना पड़ता है।

नेफा की कितनी ही आतियाँ वृक्षों के ऊपर बाँसों के घर बना कर रहती हैं। पक्षियों के बाँसों की देख कर यह विचार आदिवासी आतियों के मन में उदित हुआ होगा। वृक्षों पर रहने के कारण जगत् में घूमने वाले हाथियों आदि जानवरों से भी उनकी रक्षा हो जाती थी। कहा जाता है कि धारम्म में मनुष्य के पास रहने को घर नहीं था, ता वह जगत् के जानवरों से सलाह करने गया। हाथी ने उसे घर के लिए अपनी टाँगों जैसे लकड़ी के मजबूत खम्भे, सप ने अपने शरीर जैसे लम्बे सटठे, मैस ने अपने शरीर के बंकास जसी छत तथा मछली ने अपने कौटों जैसी पक्षियों से छप्पर बनाने की सलाह दी। अब, मनुष्य घर बना कर सुख-जन से रहने लगा।



पेढी का सिपणा इंग

पहाड़ों पर सेती

ऐसी विकट परिस्थितियों में रहने के लिए बहुत बड़े बीबट की आवश्यकता है। पता नहीं, इस विषम दशा में भी इन्सान कैसा चिन्दा रहता है। मीलों सम्वी बजर पहाड़ियाँ दिखाई देती हैं और चारों ओर जगम-ही-जगम छाया हुआ है फिर भी इन्सान सेती करके अपने अद्भुत साहस का परिचय देता है। सेती का ढग यहाँ विस्तृत निरासा है, इसे 'मूम' कहते हैं। पहले सोग अंगल के पेड़ों को काटकर पहाड़ी को चोटियों को साफ कर लेते हैं। कुछ महीने बाद इन पेड़ों के सूख जाने पर इनमें धाग लगा देते हैं और इनकी राख से बाद का काम लिया जाता है। पहाड़ियों की यह जमीन इतनी ठासु होती है कि उसमें हल चसाना कठिन है, इसलिए जमीन कुदास से सोद-सोदकर उसमें बीज बोया जाता है। सेती के लिए उपयुक्त स्याम को चुनने से जगाकर सेत की बुवाई तक का काम किसी पुरोहित-पंडित की मौजूदगी में विधिपूर्वक बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया जाता है। यहाँ अक्सर चावल की सेती होती है। ठासु पहाड़ी पर सेती होने के कारण जगली हाथियों द्वारा फसल बर्बाद किये जाने का डर नहीं रहता। चावल की बनी धराब का धार्मिक उत्सवों पर उपयोग किया जाता है।

कहते हैं कि एक बार कोई बूढ़ा आसमान से धा गिरा। उसके मुँह में चावल के दाने थे, ये दाने भी जमीन पर गिर पड़े। कुछ दिनों बाद ये दाने उग गये, और इस तरह इन्सान

को पहले-पहल चावल खाने को मिले । चूहे को जमीन खोदते बेसकर इसान से भी जमीन खोद कर खेती करना सीखा । भाबकल भी चूहा खेत के चावसों को चुरा कर से जान की तक में रहता है, क्योंकि वह समझता है कि इन चावसों पर उसका अधिकार है ।

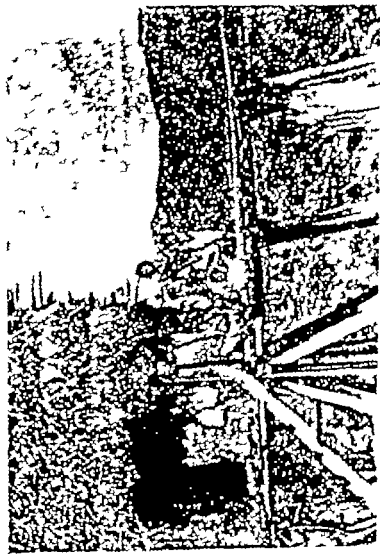
अथर्व मिर्च और तम्बाकू आदि की उत्पत्ति बताया गया है । किसी गाँव में दो भाई रहते थे बड़े का नाम था बनजी और छोटे का नाम वान-माँग । बड़ा भाई हृष्ट-मुष्ट, मुम्बर और परिधमी था, छोटा कमबोर, कुरुप और कमबोरा । छोटे भाई को जब कुछ खाने को नहीं मिला तो वह भूख से मर गया । उसकी सास बहुत दिनों तक पड़ी सबती रही । तत्पश्चात् उसके पिताशय से मिर्च और उसके नाखूनो से तम्बाकू का पौधा उगा (बेरियर एसकिन, पिप्पल ग्रीक वी नीर्ब ईस्ट कश्मियर ग्रीक इण्डिया ।)

धुमकरोँ का प्रवेश

नेफा धुमकरोँ का प्रदेश कहा जाता है । सूत कातने और कपड़ा बुनने में बड़े सन्तोष और धीरज की आवश्यकता होती है, इसीलिए आवश्यक नहीं कि नेफा की जातियों में भी ये धुम पाये जाते हैं । आदिमकाल में सब भोग नग्न अवस्था में पूमा करते थे । पहले-पहल मनुष्य ने ठंड से बचने के लिए नहीं, बल्कि जादू-टोमे के लिए वस्त्र पहनने शुरू किये । आरम्भ में मनुष्य बृक्ष की छाम अथवा पत्तों को वस्त्र के रूप में पहना करता था । भाबकल भी आदिवासी जातियाँ बँत का पट्टा

शिवपुर सिवलीवाला के एक गाँव में हुआ है और बरत का काम ही था।





बना कर उसे अपनी कमर में सपेटनी हैं। यक़रे कुछ और घाग्गी के बासों का भी वे उपयोग करती हैं। घमरी गाय की जल वे विषय से जाती हैं। सम्भवत पहले-पहल मकड़ी के जाल को देखकर मनुष्य ने बुनने की कला सीखी। चीस के पक्ष में स उसने सूत निकाला। यहाँ की प्रादिम जातियों का विदवास है कि किसी देवता ने स्वप्न में उपस्थित होकर बुनने की शिक्षा दी। कपास का पौधा भी पहले-पहल स्वप्न में ही दिखाई दिया।

कहते हैं कि हैम्बुमानी नाम की एक कन्या को किसी देवता ने बुनने की कला सिखाई। नदियों की लहरों को देख कर उसने विज्ञान, तथा बाँसों की पतियों और फूस-बीघों को देख कर मसूने तैयार किये। हैम्बुमानी का नाम इतना ही सुन्दर था जितनी कि वह स्वयं। उसके रूप-सौन्दर्य से मुग्ध होकर हर मौजवान उसका पीदी करने का इच्छुक था। एक दिन हैम्बुम ने उसके बनाये हुए सुन्दर कपड़ों को चुरा लिया। हैम्बुमानी को उसका नदी में धक्का दे दिया, उसका करघा टूट कर नदी में बह गया। बहुत-बहुते वह समतल भूमि में पहुँचा और उसकी सहायता से वहाँ रहने वाले लोगों ने बुनना सीख लिया।

भाग की शोख

फल, वस्त्र और मकान की प्राप्ति हो जाने के बाद सर्दी से बचने और भोजन पकाने के लिए उसने भाग की शोख की। एक दिन कोई प्रादिवासी जंगल में मकड़ी काट रहा था।

पास के पेड़ पर बैठे हुए पक्षी पर उसने एक पत्थर फेंक कर मारा, पत्थर घट्टान में आकर भगा। पत्थर की रगड़ से घट्टान में से चिनपागियां निकलीं और इससे पास की झाड़ी जल उठी। भाग जैसी उपयोग की वस्तु को पाकर वह घावघर्यभक्ति हो उठा।

भाड़-फूंक

नेफा की भाबहवा स्वास्थ्यभारक नहीं, इसलिए यहाँ के निवासी मसरिया, माता तपकिर और कोड़ घादि बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। सेक्सिज घाधुनिक डाक्टरों की भ्रमेया भाड़-फूंक करने वाले घोभाघों में ही उनका अधिक विदबास है। यहाँ तक कि बन्सूफ की गोमी सय जाने पर भी ये लोग घोभा के पास ही जाते हैं। पहले तो माघपाठ करके एक मेमने का वध किया जाता है और फिर घोभा भरे हुए बमड़े की पट्टी को गोमी से घायल हुए स्थान पर बाँध देता है। भादिवासी जातियों का विश्वास है कि देवी और दानवों के पारस्परिक क्रोध और ईर्ष्या के कारण ही बीमारियाँ फैलती हैं। इसलिए देवी-देवताघों का सुघर और मुर्गे की बलि चढ़ा कर उन्हें शांत करना घावश्यक है।

योजनाघों की सफलता

नेफा में रहने वाली जातियों की अनेक समस्याएँ हैं, और सन् १९५७ से ही भारत सरकार उन्हें सुलभाने का लिए प्रयत्नशील है। सबसेप्रथम उनकी योजना-समस्या को हल करने

का प्रयत्न किया जा रहा है जिससे कि खेती-बारी में आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग कर पदावार बढ़ाई जा सके। यातायात की एक दूसरी महान् समस्या है, इसे हल करने के लिए बहुत-सा द्रव्य खर्च किया जा रहा है। तेजपुर से बोम-बिन्ना की सड़क बनाने में तो भारत के इंजीनियरों ने कामास कर दिया है। स्वास्थ्य-सुधार के लिए जगह-जगह अस्पताल खोले जा रहे हैं जिनमें बहुत से डाक्टर कुशलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। शिक्षा प्रचार के लिए स्कूल खोले दिये गए हैं। दास प्रथा का अन्त हो गया है। उद्योग-धर्मों में भी वृद्धि हो रही है। नफा पर चीनी आक्रमण के बाद तो अस्दी-स-अस्दी इस समृद्ध और सम्पन्न प्रदेश के औद्योगीकरण की योजनाओं पर विचार किया जा रहा है। यहाँ के जंगलों से २६ लाख रुपये साल की आमदनी है, लेकिन इस आमदनी में वृद्धि करने के लिए महाँ से स्नीपर और टिम्बर सरादने, तथा घाँस का उपयोग करने के लिए कागज का कारखाना खोलने की योजना बन रही है। इसी प्रकार तेल, कोयले आदि सत्रिज पदार्थों को अधिक मात्रा में प्राप्त करने, तथा चाय और कॉफी उगाने की योजनाओं पर विचार किया जा रहा है।

सौन्दर्योपासना

हिम से आच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं स्वच्छ जल से पूरित नदियों पहाड़ों की खोटियों से गिरने वाले जलप्रपातों तथा हरे भरे देवदारु और सदा के बूटों से आवृत घाटियों से साक्षित पालित इस प्रदेश के वासी सदा से प्रकृति-मौन्द्य के उपास-

रहे हैं। इसका परिणाम उनके मन और मस्तिष्क पर हुआ, जिससे ये लोग सहृदय और उदारचित्त बन सके और कसा कौशल की ओर इनका झुकाव हुआ। उदाहरण के लिए, यहाँ की मोनपा जाति विविध कसाघों और सासकर चित्रकसा और अपने नृत्यों के लिए प्रख्यात है। इन जातियों की लोक कथाघों में जन-जीवन की क्लृप्ती ही हास्य और विनोदप्रिय कहानियाँ पायी जाती हैं।

गंगोबा राजा

गारो-लोककथा में गंगोबा राजा की एक कहानी आती है। गंगोबा राजा एक बहुत मालदार व्यक्ति था लेकिन कोई गारो उसे नहीं चाहता था। एक दिन गाँव बासों ने सोचा कि क्यों न उसके घर में भाग लगा दी जाये। गंगोबा को इस बात का पता लग गया और वह अपना घर-बार छोड़ कर भाग गया। अगले दिन लोगों ने देखा कि वह अपने जैसे हुए घर में से रास बटोर रहा है। उसके दो दिन बाद वह अपने सामान के साथ घर सौट आया। यह देख कर गाँव बासों को बहुत ताज्जुब हुआ। पूछने पर गंगोबा ने कहा कि अपने जैसे हुए घर की रास उसने असम के किसी व्यापारी को बेच दी है जिससे उसे काफी रकम मिली है। गारो जाति के मुखिया ने गंगोबा की बात पर विश्वास कर लिया। उसने सारे गाँव में भाग लगा दी और वह घरों की रास बेचने के लिए बाजार में निकला। लेकिन उसकी कोई कीमत उसे न मिली। इस प्रकार गंगोबा गाँव के लोगों को बार-बार बेवकूफ बनाता रहा। उन्होंने उसे जान से

मार झालने का इरादा किया। वे लोग एक बड़ा पिंजरा लाये और गंगोवा को उसमें बठा कर उसे नदी में डुबोने बस दिये। गर्मी का मीसम था गाँव वालों ने साचा, खरा धाराम ही कर लें। यह सोचकर पिंजरे को एक धोर रख कर वे लोग धाराम से चोगये। गंगोवा को पास में एक ग्वासा दिखाई दिया। उसने ग्वासे को पास बुला कर कहा कि देखो, ये गाँव वाले उसकी मर्जी के खिलाफ उसे ब्याहने ले जा रहे हैं। गंगोवा ने ग्वासे को अपनी जगह बठ जाने को कहा और वह पिंजरे में से निकल भागा। गाँव वाले धाराम करके वापस सीटे और उन्होंने ग्वासे को नदी में डुबो दिया। अगले दिन गंगोवा को भूमते-फिरते देख उन लोगों को बड़ा ताज्जुब हुआ। गंगोवा से पूछने पर उसने उत्तर दिया—नदी के अल के नीचे एक शक्ति-शाली राजा निवास करता है वह गारो जाति के लोगों से मिशन का बड़ा हच्छुक है। इस राजा ने उसे बहुत से उपहार देकर सम्मानपूर्वक बिदा किया है और कहताया है कि सारे गाँव के लोग उपहार लेकर आयें और उससे मिलें। गाँव वालों को गंगोवा की बात पर विश्वास हो गया। वे लोग बड़ी बड़ी टोकरियों में एक से एक कीमती उपहार भरकर अल-राजा को प्रसन्न करने के लिए नदी-किनारे उपस्थित हुए। गंगोवा ने मौका पाकर सब लोगों को नदी में धकेल दिया और वह राजा बनकर राज्य करने लगा !

सीमा प्रदेश की जातियाँ

प्राचीन काल की गण-व्यवस्था

वैदिक और बौद्ध काल में तैरपाद शिबि, पक्ष्य, वज्जी, लिच्छवी मत्स्य, साक्य आदि गणों का उल्लेख आता है। आदिवासी कबीले भी गण-व्यवस्था का ही एक रूप थे। सम्प्रदाय के शौर्यकाल में प्राकृतिक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहने के कारण इन कबीलों का जीवन सदा अभाव और संकट में बीता है। एक कबीले को दूसरे कबीले से अपनी रक्षा करनी पड़ती है। इसलिये युद्ध ही एकमात्र शरण थी। ऐसी हानत में अपने अपने कबीलों में आत्मकेन्द्रित हो जाने के कारण ये लोग अपरिचित और अनजान लोगों से सशक रहने लगे। इस संघकला का एक सुसद परिणाम भी हुआ और वह यह कि उनका अपनी सभाओं और मण्डलियों में एकत्रित होकर जन और गण से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा करना और गण के उत्साह की आज्ञा शिरोधार्य करणा। उस काल में स्त्रियाँ भी पुरुषों के प्रत्येक कार्य में हाथ घँटाती थीं, इसलिये कबीलों के समाज में बराबरी का दर्जा होने से उन्हें पर्याप्त सम्मान दिया गया। बौद्धकाल के वशासी निवासी लिच्छवियों में गण व्यवस्था का यह रूप मौजूद था और बुद्ध भगवान् ने इस व्यवस्था के आधार पर अपना बौद्ध संघ स्थापित किया था।

नेफा के कबीले भी इस जन और गण-व्यवस्था के अनुयायी रहे अन्तर केवल यही कि लिच्छवी गण की व्यवस्था आर्थिक विकास के काल की व्यवस्था थी जबकि नेफा के कबीलों की व्यवस्था अनेक कारणों से पिछड़ी हुई रह गयी।

अनुशासन-प्रिय नेफा के कबीले सदा से मिस-जुसकर रहे हैं तथा निर्भीक, साहसी, परिश्रमी और आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करते आये हैं। जाति-पाति की व्यवस्था ये स्वीकार नहीं करते विचारों में उदार होते हैं और अपने प्रतिद्वियों का खूब सत्कार करते हैं। आज भी ये कबीले अपनी ग्राम-समाजों में बैठकर आपसी मगड़े तय करते हैं और जो किसी ने वहीं कुछ देखा या सुना हो उसे अपने साथियों को सुनाते हैं, तथा रात को १० से ११ के बीच सारे गाँव में अगले दिन के कार्य-क्रम की घोषणा करते हैं कि कल बीते का शिकार किया जाएगा या मछली का, जंगल के बूझों को काटा जाएगा या खेत की फसल को या फिर घूमघाम से कोई उत्सव मनाया जायगा।

(१) कार्मेग सीमा-प्रदेश

नेफा का कार्मेग सीमा प्रदेश अन्य सीमा प्रदेशों की अपेक्षा अधिक विकसित और सम्पन्न है। यह प्रदेश भूटान और तिब्बत के बीच अवस्थित है। तिब्बत जाने के लिए यहाँ से तीन मार्ग हैं पहले दो, जलपरी से लेकर मई तक बन्द रहते हैं तीसरा मार्ग बारह महीने खुला रहता है। इसी मार्ग से तिब्बत के दसईं नामा अपने खच्चरों पर पोथला का अपना कीमती

समाना सादकर हिन्दुस्तान पहुँचे थे। यहाँ से तिब्बत का माग सुमभ होने के कारण यह प्रवेश चीनी सेनाओं के आक्रमण का शिकार हो गया, और पूरे एक महीने तक यहाँ के पॉसिटिक्स प्रप्रत्तर के हैडक्वार्टर, १० हजार फुट ऊँचे बोमडिमा पहाड़ पर वे कब्जा किये रहे।



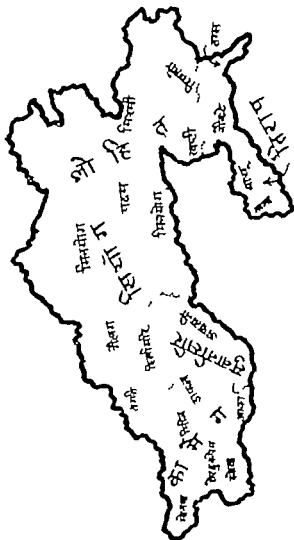
कामेंग सीमा प्रदेश

कामेंग नदी के छट पर घसा हुआ होने के कारण यह प्रदेश कामेंग नाम से कहा जाता है। यहाँ बारहों महीने सर्पि होती है और बर्फ पिरता है। बहती हुई नदियों भीलों, झरनों, सहस्रहाते हुए वृक्ष-कुंजों तथा भाँति भाँति की रंग विरंगी फूल-पतियों वाले झाड़ों से यह प्रदेश रम्य है। हरी मरी पहाड़ियों से पिरि हुई पर्वत-श्रृंखलाओं और नीचे की ओर दिखारि देने वाली पर्वत की चाटियों के वृक्ष प्रत्यस्त मनोरम हैं। जान

पड़ता है कि प्रकृति न भ्रान्त विभोर होकर अपनी समस्त सुपना और सौन्दर्यगरिमा बिखेर दी है। रास्ते यहाँ के इतने ऊँड़-सावड़ हैं कि पहाड़ी टट्टुओं के बिना यात्रा करना असम्भव है। ऊपर काले-काले वादल और नीचे घने जंगलों से घाँछादित भ्रन्तहीन वरों को देखने मात्र से दिम भाँप उठता है। बर्फीसी हवा इतनी तेज चसती है कि मानो खाबू के घाव लग रहे हों।

वामडिमा से टट्टू पर बैठकर डिरांग वृजोंग पहुँचने में दो दिन लगते हैं। तिब्बती भाषा में वृजोंग का अर्थ किमा होता है, अर्थात् यह किले का गाँव है। उन दिनों अपने-अपने गाँवों की रक्षा के लिए आदिवासी जातियाँ किसे चौकती थीं, जिससे दूसरे कबीले उन पर आक्रमण न कर सकें। 'सीच-फायर' (युद्धबन्दी) की एक-तरफ़ा घोषणा के पश्चात् चीनी सैनिक वामडिमा छोड़कर यहाँ से चले गये और बहुत दिनों तक यहाँ युद्ध के कदियों को लौटाने का काम चसता रहा। कहते हैं कि चीनी सिपाही डिरांग घाटी के किन्तने ही नवयुवकों को पकड़कर पेकिंग की अस्पसम्भक आतियों की इन्स्टिट्यूट में ट्रेनिंग के लिए ले गये हैं और ट्रेनिंग के बाद उन्हें इन पहाड़ी प्रदेशों में प्रचार के लिये भेजा जायगा।

सी-सा इस प्रदेश का दूसरा मुख्य स्थान है। यह कामेंग नदी के किनारे बसा हुआ है और वामडिमा से ७५ मील दूर है। १४००० फुट ऊँचे इसपर्वत शिखरपर बर्फा होती रहती है और बर्फ ही बर्फ चरसता है। चारों ओर बर्फ से ढके पहाड़ नजर आ रहे हैं। ११५०० फुट से भागे जाकर तो आदिवासी भी



भारत की सीमाएँ

रहने की हिम्मत नहीं करते। यहाँ वो बड़ी-बड़ी झीलें हैं जिनसे इस निर्जन पहाड़ी का सौन्दर्य निरंतर उठा है।

तोबांग का बौद्धमठ

तोबांग इस प्रदेश का अत्यन्त रमणीय स्थान है। चारों ओर सदा हरे रहने वाले वेवदार और वसूत के वृक्ष तथा माँति माँति के गुलाबी नीले-पीले और हरे पुष्पों की मयनाभिराम जगती झाड़ियाँ मन को मुग्ध कर देती हैं। सीमा पहुँचने में यहाँ छह दिन लगते हैं लेकिन मालूम होता है कि समीप पर स्वर्ग उतर आया है। तोबांग संसार प्रसिद्ध अपने बौद्धमठ के लिए प्रख्यात है। भारत का यह सबसे बड़ा मठ है जो शाह से ३१० वर्ष पहले पास के गाँव में छठे ब्लाई सामा के जन्म के बाद बनाया गया था। इस मठ में ६०० सामा रह सकते हैं। इनमें बहुत से सामा नवयुवक भी होते हैं जो बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के साथ-साथ खेतीबारी, पशु-पालन पाकविद्या आदि उपयोगी कामों की भी शिक्षा प्राप्त करते हैं। मठ की दिवाले बुद्ध भगवान के जीवन की कथाओं से अंकित है। तोबांग का धर्म होता है 'टट्टुओं का धर्म'। इन प्रदेशों के लिए टट्टु ही एकमात्र सवारी है इसलिये टट्टु की आदमी से भी अधिक कीमत है।

कार्मोंग की विशिष्ट जातियाँ

इस सीमा प्रदेश में मीमपा शेरडुकपत, बुगुन (अथवा खोबा), हूसो (अथवा आका) मिजि (अथवा घम्माई), तथा

बंगनी (मधवा डाफला) जातियाँ निवास करती हैं। इनमें मोनपा एक सुसंस्कृत और कृषाप्रिय जाति है। ये लोग पश्चिम की ओर लोदांग और डिरांग दूजोंग के घासपास के गाँवों में निवास करते हैं। बौद्ध धर्म को ये मानते हैं और इनकी जनसंख्या लगभग २० हजार है। ये लोग बड़े शान्त, विनयी, उत्साही और परिश्रमी होते हैं, अपने प्रतिधियों का दिस खोज कर स्वागत करते हैं। ग्राम-पंचायतों द्वारा अपने विवाहास्पद प्रदनों को निबटाते हैं। मोनपा बहुत अच्छे किसान होते हैं। चावल की बे खेती करते हैं तथा बमूत की पतियों और गोबर की खाद को खेतों में डालते हैं। भाइयों के भलाभा ये गाय बल, चमरी गाय और भेड़ को पालते हैं। नेफा की आदिवासी जातियों में केवल मोनपा ही गाय का दूध पीते हैं बाकी जातियाँ दूध को निषिद्ध समझती हैं। ये लोग प्रायः में नमक और मक्खन डालकर पीते हैं। मोनपा सिम्बरी पोशाक पहनते हैं तथा सिम्बरी सूटान और कसिंगपोंग से व्यापार करते हैं। ये लोग सकड़ी के फर्श वाले पत्थर के घरों में रहते हैं रंग डिरांग सुम्बर वस्त्र पहनते हैं सुम्बर डियाइन जैसे गसीने बुनते हैं, वनस्पतियों से कागज बनाते हैं, सकड़ी के साँचों से धर्म ग्रन्थ छापते हैं तथा बनावटी ब्रेहरे बनाकर सिंह गाय, मोर आदि के सरस नृत्य करते हैं।

शेरदुकपेन कामेंग सीमाप्रदेश के उत्तर में रहते हैं। ये लोग भी बौद्ध धर्म क अनुयायी हैं और मोनपाओं के साथ इनके रीति-रिवाज मिसल-जुसते हैं। ये खेतीबारी करते हैं, बेंत और बाँस से टोकरियाँ और बोटन आदि बनाते हैं और सकड़ी का



कामय की आदिवासी जातिवा



माया पति माया निजि गली व साध

काम करते हैं। सर्दियों के मौसम में समतल भूमि में रहने के लिए चले जाते हैं और वहाँ के लोगों के साथ व्यापार करते हैं।

मोनपा और घेरहुकपेन जाति के पास ही बुगुन (अथवा खोवा) और हूसो (अथवा आका) लोग रहते हैं। हूसो जाति के प्रमुख तांगी राजा महोम राजाओं के काम में उपद्रवों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। भूटान और असम से वे कपड़ा, कबल और ससवार आदि सरोदते हैं। अपनी स्त्रियों का बेचहुस धार करते हैं। ये लोग बहुत सीधे-सादे और गरीब होते हैं। ये वर्ष से ठके हुए ऊँचे पर्वतों जब प्रवाह के कारण क्षय करती हुई घाटियों और घन जंगलों से भयभीत रहते हैं। इन्हें वे अपने देवता मानकर इनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं। कुत्ते और हाथी आदि जानवरों का मांस वे भक्षण नहीं करते। मित्रि (अथवा घम्मई) उत्तर की ओर बसते हैं। इस जाति के स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने बाल झड़ते हैं स्त्रियाँ पौड़ी के धामूपण पहनती हैं।

डाफसा (अथवा वगनी) सब जातियों में मशहूर माने जाते हैं। उनका कहना है कि जिस जमड़ी पर दुनिया की जनसंख्या सिखी हुई थी, उसका हिस्सा उन्हें मिला था लेकिन भूख लगने पर वे उस खा गये, जबकि मदान में रहने वाले लोगों ने उसे सुरक्षित रखा। और्यबब क उमाने से ही वे बड़े उपद्रवी रहे हैं और उन्हें बल में करना कठिन समझा जाता रहा है। वे कामेंग के पूर्व और सुबानसिरि के पश्चिम में रहते हैं। पहले युद्ध में बन्दी किये हुए सैनिकों से वे गुलामी कराते थे और मौका पाकर अजातजाति जाति के गाँवों पर धावा बोल देते थे। इस जाति के पुरुष वालों का झुंड बनाकर अपने मस्तक पर

वाँघते हैं। ये लोग सम्वे घर बनाकर रहते हैं, जिससे कि सारा परिवार एक साथ रह सके। छीन वर्ष तक एक घर में रहने के बाद ये दूसरा घर बनाते हैं। भ्राजकस ये भ्रपातानियों से व्यापार करते हैं उन्हें कपास देकर उनसे कपड़ा और चाबल खरीदते हैं। बाँस और बेंत से य बहुत सी चीजें बनाते हैं और कुत्तों को पालते हैं।

उनका एक प्रेमगीत देखिये —

हम दोनों अपने यौवन के प्रारम में हैं
 हम आपस में दोस्ती करें
 हम एक दूसरे को भ्राजिगन करें
 जैसे कि केश की दो पत्तियों करती है
 यदि हमें पहाड़ी पर चढ़ना हो तो
 हम साथ-साथ चढ़ेंगे
 यदि हमें दरिया पार करना हो तो
 हम साथ-साथ करेंगे

(२) सुवानसिरि सीमा प्रवेश

सुवानसिरि नेफा का दूसरा महत्वपूर्ण प्रदेश है। यह सुवानसिरि नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ की मिट्टी नरम है और बारहों महीने वर्षा होती रहती है, इसलिए सन् १९४० तक इस प्रदेश में सड़कों का निर्माण न हो सका। लेकिन आखिर भारतीय इंजीनियरों की सेना अपनी जान जोखिम में बास कर इस कार्य में जुट पड़ी और सन् १९३२ से १९५८ के बीच उन्होंने पीरो से लेकर किमिन तक सड़क



एकमा मुशतिपा



बना कर ही छोड़ी। निस्सन्देह इस साहसिक काम में अनेक इजीनियरों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। इन उहीदों के नाम सबक पर लगे हुए पत्थरों पर घाज भी देखे जा सकते हैं।

इस प्रदेश की विशिष्ट जातियाँ

इस प्रदेश में अपातानी तर्नो गैलंग और हिममिरि जातियाँ निवास करती हैं। इनमें अपातानी अनेक वृष्टियों से उल्लेखनीय है। दुनिया से दूर, पूर्वी हिमासय के एक कोने में बसी हुई अपातानी जाति का पहले किसी को पता भी न था। सबसे पहले १८६० में चाय की खेती करने वाले एच० एम० क्रो यहाँ आ कर रहे। तत्पश्चात् १९४४ में हाइमन डोर्क नाम के ब्रिटिश अफसर ने इसका पता लगाया और यहाँ रह कर उन्होंने इस जाति के रीति-रिवाज आदि का अध्ययन किया।

१००० फुट ऊँची २० वर्गमील में फैली हुई प्राकृतिक सौन्दर्य से रमणीय इस घाटी में कुल ७ गाँव हैं जिनमें २५२० घरों में लगभग २० हजार अपातानी रहते हैं। इनकी वाली विसफुल मिन है इसलिये घाटी के बाहर के लोग उसे नहीं समझते। इस घाटी में 'नी' शब्द का अर्थ मानव होता है (नागा भी 'नोक' शब्द से बना बताया जाता है, और इसका अर्थ मनुष्य है) और अपने आपको यहाँ 'नी' कहते हैं इससे इस जाति की प्राचीनता का पता लगता है। आरकस की दुनिया के आधुनिक प्रभावों से मुक्त यह जाति अपना सीधा-सादा जीवन बिताती है। गाँवों में ग्राम-पञ्चायतों का शासन

धमता है और कबीले के प्रधान की आत्मा सर्वापरि होती है। धान की खेती यहाँ बहुसामय से होती है। इस के अभाव में किसान कुदासी से खेत मोड़ते हैं और एक वर्ष में दो फसल काटते हैं। चावल के असावा, धाजरा और मकई की भी खेती होती है। ये लोग जंगली बंस, बकरी, सुभर और मुगियाँ पालते हैं। भाँति भाँति के बाँसों और दवदार के कुंज दूर तक दिखाई पड़ते हैं, बाढ़ों में तम्बाकू, साग भाजी और फल-फूस बोये हुये हैं।

अपातामी सम्ये कय के खूबसूरत लोग होते हैं। अपनी ठोड़ी पर वे गोदना गुदवाते हैं, औरते केसों का जूड़ा बना कर अपने सिर पर बाँधती हैं, बेटों को कमरबन्द के बाम में लेती हैं। जैसे ये लोग अच्छे किसान होते हैं वैसे ही अच्छे युद्धर भी होते हैं। बपड़ा बचने के लिए लखीमपुर जाते हैं और बपड़ा बेचकर ममक कुदासी आदि सामान लगीदते हैं। अग्रज से सितम्बर तक वर्षा के कारण यहाँ के रास्ते खराब रहते हैं इस-सिये गाँवों के महीनों में ही बाहर जा सकते हैं। विवाह-शादी के अर्पण परम्परागत रिवाज पालते हैं। सड़के-सड़कों की दादी में माता-पिता दलस नहीं देते। शादी होने के पहले ही सड़का या सड़की एक दूसरे के घर जा कर रह सकते हैं। अपातानियों का विश्वास है कि गर्भ धारण की स्थिति दादी के पश्चात् ही उत्पन्न होती आइए, फिर भी यदि बदाधित् दादी के पहले किसी कन्या के गर्भ रह जाय तो उसे अच्छा नहीं कहा जाता।

तम्ही जाति के लोग सुवानमिरि के उत्तर-पूर्व में तथा वल्लभ और हिलमिरि उत्तर में रहते हैं। सन् १९११ से पूर्व



हो गई। सन् १९५८-५९ की पीतशुभ्र में इन सीपों ने अपने लक्ष के अन्तर्गत ११ ००० मन चावल पैदा किया और इसे बाजार में बेच दिया गया। चावल के अन्तर्गत ये सीपों केसे कटहल, अन्नदास आम नाचपाती, अमरुद सीपों और सुपारी आदि भी पैदा करते हैं। बाँसों के लसों को गाँवों में पीने का स्वच्छ जल साने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

गाँव का शासन पंचायतों से चलता है, इसलिये जनतंत्र की मुख्यता है। ग्राम-पंचायतों के बारे में उनके अनेक लोक-गीत प्रचलित हैं। एक लोकगीत देखिये—

“ए गाँव के निवासियों और भाइयों! हम अपने रीति-रिवाजों और पंचायतों को समर्थनायी बनायें। हम अपने प्रस्तावों को देख बनायें। हम अपने नियमों को सीधे-साधे और सबके लिए एक जैसे बनायें। जो हमारे नेता सबसे उत्तम प्रकार से बोल सकते हों वे लड़े हो जायें और हमारी बेहतरी के लिए संभाषण करें, वे इसी तरह के साहसपूर्ण कार्यों का प्रयोग करें जैसे कि कोई मूर्ख निर्मल और निर्मल रूप से साँग देता है।”

समाज में स्त्रियों को ऊँचा स्थान प्राप्त है। विनयोंग कुशल चुनकर होते हैं और नृत्य में रुचि रखते हैं। सड़के-सड़कियों का विवाह माता पिता करते हैं। विवाह अपने से अलग जगह में ही होता है। पहले ये सीपों सड़क के रूप में प्रसिद्ध थे और गुनाम रखते थे लेकिन अब इनकी हर बात में परिवर्तन हो रहा है।

पहले पासीघाट में रहते हैं। इनके रीति रिवाज विनयोंग



मियाँम पिन्डीबल का एक दृश्य

हो गई। सन् १९५८-५९ की घीतघृतु में इन लोगों ने अपने स्वयं के धनादा ११००० मन चावल पदा किया और इसे बाजार में बेच दिया गया। चावल के धनादा ये लोग केसे, कटहल, भनभास आम माणपाती, धमरुय लीची और सुपारी आदि भी पैदा करते हैं। बाँसों के नसों को गाँवों में पीने का स्वच्छ जल लाने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

गाँव का शासन पंचायतों से चलता है, इसलिये जनतंत्र की मुख्यता है। ग्राम-पंचायतों के बारे में उनके अनेक लोक-गीत प्रचलित हैं। एक लोकगीत देखिये—

‘ए गाँव के निवासियों और भाइयों ! हम अपने रीति रिवाजों और पंचायतों को शक्तिशाली बनायें। हम अपने प्रस्तावों का खेप्ट बनायें। हम अपने नियमों को सीधे-सादे और सबके लिए एक जस बनायें। जो हमारे नेता सबसे उत्तम प्रकार से बोल सकते हों वे लड़े हो जायें और हमारी बेहतरी के लिए संभाषण करें, वे इसी तरह के साहसपूर्ण शब्दों का प्रयोग करें जैसे कि कोई मुर्गा निर्लज्ज और निर्भय रूप से बाँग देता है।’

समाज में स्त्रियों को उँचा स्थान प्राप्त है। मिनयोंग कुशल चुनकर होते हैं और नृत्य में रुचि रखते हैं। सबके सड़कियों का विवाह माता-पिता करते हैं। विवाह अपने से भिन्न वध में ही होता है। पहले ये लोग सड़ापू के रूप में प्रसिद्ध थे और गुलाम रखते थे लेकिन अब इनकी हर बात में परिवर्तन हो रहा है।

पवम पासीघाट में रहते हैं। इनके रीति रिवाज मिनयोंग





एक पद्म मुक्क

सोर्गों से मिलते-जुलते हैं। कहते हैं कि जब इस पृथ्वी पर दमदम ही दलदल भरी हुई थी तो ईद्वर स्वर्ग से भवतरित हुमा घोर उमन मुट्टी भर दमदम से दो भाई और दो बहनों की सृष्टि की। बड़े भाई की सन्तान पदम और छोटे भाई की संतान मिरिस कहलाई। गिमोंग पर सियांग नदी के बायें किनारे पर तथा तगिन सियांग के पश्चिम में और सुबानमिरि के उत्तर-पूर्व में रहते हैं। प्रकृति के विरुद्ध इन जातियों को बहुत संघर्ष करना पड़ा है इसलिए ये जातियाँ काफी मजबूत और स्वभाव से परित्यगी बन गई हैं।

(४) लोहित सीमा प्रवेश

लोहित सीमा प्रदेश अन्य प्रदेशों की अपेक्षा दुर्गम है। अनेक युरोपियनों ने समय-समय पर इसका दौरा किया है। सन् १८२७ में सेप्टिनेंट विलकोक्स, १८३६ में डाक्टर बिसियम सिफेय, १८६५ में लेपिटनॉट रसिट १८५४ में फादर त्रिक तथा १९०७ में मोएस बिसियमसुन यहाँ घाय थे। इसर नेफा के अन्तर्जातीय मामलों में भारत सरकार के सलाहकार डाक्टर वरियर एलविन ने भी इस प्रदेश में भ्रमण किया है। ग्राम-युरोपियन यात्रियों ने यहाँ की आदिवासी जातियों के सम्बन्ध में सुस्तोपजनक विचार व्यक्त नहीं किये लेकिन डाक्टर एलविन ने ऐतिहासिक विद्वेषण करते हुए इन जातियों को बहुत घान्त विमर्श उत्साही और घातिष्यप्रिय बताया है। इस दुर्गम प्रदेश में ब्रह्मपुत्र नदी बहती है। इस प्रदेश का तीन-चौथाई हिस्सा पर्वत-श्रृंखलाओं से व्याप्त है, बस्ती दूर-दूर

पाई जाती है। यहाँ की भूमि में लगातार कंपन होता रहता है जिससे पहाड़ियों की शिखारों के गिरने का सदा भय बना रहता है। इस तरह गाँव क गाँव शिखारों के नीचे दबकर खसनापूर हो जाते हैं। १९५० का भूकम्प सोहितवासियों को सदा याद रहेगा जब कि जान-मास की यहाँ अपार क्षति हुई, जो अब तक भी पूरी नहीं की जा सकी। सन् १९५८ में डिवांग घाटी में शिलाखड के ढह जाने से एक साथ ५२ भादमियों की मृत्यु हो गई, जिनमें एक असिस्टेंट इंजीनियर भी था।

यह प्रदेश सोहित घाटी और डिवांग घाटी नाम के दो भागों में विभाजित है। त्रेत्रु सोहित घाटी का और रोइंग डिवांग घाटी का हैडक्वार्टर है। इन दोनों स्थानों से कुण्डिम (पुराना सादिया) तक सड़क बनी हुई है। इस प्रदेश में तिब्बत, चीन और बर्मा के लोग आकर बस गये हैं। यहाँ से चीन को सड़क गयी है। ब्रिटिश सरकार इसे सीधी चीन तक से जाना चाहती थी जिसके लिए अनेक प्रयत्नों ने रिमा का दौरा किया। रिमा जाने वाली सड़क सोहित नदी के किनारे-किनारे होकर गई है। सोहितपूर तक मोटर जाती है उससे बाद पैदल चलना पड़ता है। सीमाप्रान्त पर सोहित नदी को रस्से के पुस पर से सरक-सरक कर पार करना पड़ता है।

सोहित की विशिष्ट जातियाँ

सोहित सीमाप्रान्त में मिदमी, खंटी और मिगफो जाति जाती हैं, इनमें मिदमी मुख्य है। मिदमी बड़े शक्ति



मिहमी वृष्णति

घोर परिश्रमो होते हैं तथा जानबूझकर दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचाते। नदी-नाले पार करन के लिए रस्सों और बेंतों के पुल बनाने में ये प्रसिद्ध हैं। इनके गाँवों में अधिक बम्पी नहीं होती। एक गाँव में २ से सगाकर ६ तक मकान होते हैं, इसलिए इन्हें पानी और दवादारु आदि की काफी तकलीफ रहती है। घर बड़े होते हैं और एक घर में १० से ६० तक आदमी रह सकते हैं। हिन्दूधर्म से ये प्रभावित हैं। मिस्मी इदु मिष्मी (बुसिकट), कामन मिस्मी (निज) और तरांव मिस्मी (दिमार) नाम के तीन भागों में बटे हुए हैं। इदु मिस्मी साहित्य के उत्तर-पश्चिम में डिब्रोंग घाटी में रहते हैं। पहले ये बर्मा में रहते थे। अपने बासों को ये पिर के चारों तरफ से गोस काटते हैं। कामन मिस्मी सोहित नदी के ऊपरी भाग में रहते हैं। खेती-बारी ये नहीं करते बेंत काटन में ये चतुर हाथ हैं। सम्बाबू और प्रफोम के ये बहुत पौकीन हैं और इसके लिए कास या चाँदी के पाइप इस्तमाल करते हैं। तरांव मिस्मी साहित्य नदी के निचले हिस्से में रहते हैं। ये मोग बहुत अच्छे वृत्कर होते हैं, तथा कस्तूरी मोम हाथो-यांत खर और सूट आदि का मदानों में ले आकर बेचते हैं।

खप्टी सोहित प्रदेश के उत्तर में चौखम क्षेत्र में रहते हैं। ये ऊँचे बंद के और खूबमूरत होते हैं। लगभग २०० वर्ष पहले वे बर्मा से आकर यहाँ बस गये थे। ये ताइ परिवार की भारत चीनी भाषा बोलते हैं। नेफा की आन्ध्रवामी जातियों में केबस इन्हीं की लिखित भाषा है। बौद्ध धर्म के उपासक

हैं और हीनयान पंथ को मानते हैं। ये नोग नदी के बांधों से खेतों की सिंचाई करते हैं। चौसम गाँव के बांध से ५०० एकड़ जमीन की सिंचाई होती है जिससे यहाँ धन्न की पदावार बढ़ गई है। श्री चौसम गोहड़न नदी के किनारे सुन्दर घर बनाकर रहते हैं। लोकसभा के व माननीय सदस्य हैं।

छात्रियों की भाँति सिंगपो भी पहले बहुत लड़ाकू माने जाते थे लेकिन आजकल दोनों ही शान्त जीवन व्यतीत करते हैं। सिंगपो बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं, और ये भी बर्मा से यहाँ आकर रहने लगे हैं। ये चाबस की खेती करते हैं। ये नोग बूझ की पत्तियों पर लिखते हैं, इससे पता लगता है कि इनकी बोली की कोई लिपि रही होगी लेकिन आजकल अपनी लिपि को ये भूल गये हैं। अनेक देवी-देवताओं में ये विश्वास करते हैं और इसलिये किसी रोगी को अच्छा करने के लिए सुघर या मुर्गे की बलि चढ़ाते हैं।

(५) तिराप सीमा प्रवेश

तिराप सीमा प्रवेश में तिराप नदी बहती है। सन् १९२४ से यह नाम इसे दिया गया है। तिराप जसर में लोहित सीमा प्रदेश, पूर्व में बर्मा, दक्षिण में नागा-हिस्स ल्बेनसांग प्रदेश और पश्चिम में असम से चिरा हुआ है। सापेखाटी, नामरूप, नहरकटिया और मार्घरिटा स्टेशनों से यहाँ पहुँचते हैं। मठ सब यह कि अन्य प्रदेशों के मुकाबले में यह प्रदेश सुगम है। कोनसा यहाँ का डिबीजनस हैडक्वार्टर है। मार्घरिटा से कोनसा जाने के लिए सड़क है और इस सड़क पर ४ मील चलने के

पश्चात् हम तिराप पहाड़ियों में प्रवेश करते हैं। यहाँ से दूर-दूर पहाड़ियों की श्रोटियों पर बसे हुए आदिवासियों के गाँव दिखाई देते हैं। धारा प्रवेश विद्यालय बूझों, मुन्दर भाड़ियों और हरी-मरी सताघों से घिरा हुआ है। भरने और नदी-नाले यहाँ देखने में नहीं आते। इसलिए पुस बनाने की इतनी आवश्यकता नहीं पड़ती कि नेफा के अन्य प्रदेशों में। हाथी आदि जङ्गली जानवरों से व्याप्त घन जङ्गल दूर तक चले गये हैं, और घाटियाँ मक्खी-मच्छर और साप आदि विषैले जन्तुओं से व्याप्त हैं। नागा-हिन्दु के रास्ते ठामु होने के कारण बड़े दुगम है। जमीन पर कीचड़ ही कीचड़ बिछी हुई है, साँप पैरों के नीचे से सर्र करके निकल आते हैं। हवा में कीड़े-मकोड़ भिनभिनाते रहते हैं, झाड़-झुंझाड़ अपने काँटेदार तनों को उठाये खड़े हैं और प्यास लगने पर एक बूद पानी भी यहाँ मयस्सर नहीं होता।

तिराप के उत्तर-पूर्व में पांगसू दर्रा दिखायी दे रहा है। यहाँ से अहोम सप्टी और सिंगपो लोगों ने हिन्दुस्तान में प्रवेश करके असम की संस्कृति को प्रभावित किया था। यहीं होकर बर्मो सना ने असम पर आक्रमण किया और असम की पाटी का असम के ही स्त्री-पुरुषों के रक्त से रमित कर दिया। द्वितीय विश्व-युद्ध में भारतीय सेना ने जापानी सेनाओं को घेरने के लिए यहीं से कूच किया था।

इस प्रदेश की भाषा आदि जातियाँ

इस प्रदेश में नागा जाति की संख्या ही अधिक है। सन्

१२२६ में नागाओं ने ही पहल-पहल ग्रहोर्मों के आक्रमण का विरोध किया था, और इस विरोध की उन्हें कीमत चुकानी पड़ी। ग्रहोर्म इतने क्रूर थे कि छोटी सी बात पर वे अपराधी के सिर को घड़ से उड़ा देने में सकोच न करते थे। आश्चर्य नहीं कि नागा जाति ने अपने दासकों से ही सिरों के धिकार करने की विद्या सीखी हो। लेकिन आजकल नेफा के ग्रन्थ प्राविवासियों की भाँति नागा लोग भी मिल-जुसकर रहते हैं और सहयोगपूर्ण जीवन विताते हैं। यदि कमी गाँव का कोई घर धाग से असकर भस्म हो जाय तो सब मिसकर उसे फिर से बनाते हैं। धोरों की अपेक्षा इनके गाँव बड़े होठ हैं और एक गाँव में ३०० से अधिक परिवार रहते हैं। कमीने के नेता का घर सबसे बड़ा होता है। नागा लोग खेती करते हैं वे बड़े अच्छे शिकारी होते हैं और हाथी का धिकार करने में बुरास समझे जाते हैं। विवाह होने के पहले ही भडके और सडकियाँ साथ रहने लगती हैं और यदि भडकी गर्भवती हो जाये तो फिर दोनों का विवाह हो जाता है। विवाह की यह परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आती है। दूसरे विश्वयुद्ध तक नागा-हिन्द में कोई नहीं जा सकता था। उसके पश्चात् नागालैंड में राजनीतिक हस्तक्षेप मधी जिससे इस प्रदेश में आजकल स्वायत्त शासन हो गया है। डिप्टी कमिश्नर कोहिमा में बैठकर यहाँ का शासन चलाते हैं।

नागा जाति नोबटे और बाँचू नामक दो भागों में विभक्त है। नोबटे अपने को हिन्दू बताते हैं और वज्रवधर्म को पासते हैं। बाँचू हद्दी, सींग, कौडी और हाथीदाँत के गहने पहनते

हैं, उनकी औरतें अपने कानों और केशों को भाँति भाँति के पक्षों और फूलों से सजाती हैं।

तंगस और सिंगपो भी इसी प्रदेश के निवासी हैं जो बर्मा से यहाँ आकर बस गये हैं।

आदिवासी जातियों के विश्वास

इस प्रकार हम देखते हैं कि नेफा की आदिवासी जातियों के भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पालित-पोषित होने के कारण इनकी प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं और इनके परम्परागत विश्वास भी भिन्न हैं। सभी जातियाँ किसी न किसी रूप में किसी विश्व सत्ता में विश्वास करती हैं और इस सत्ता को स्यायवान और परोपकारी मानती हैं। पृथ्वी और आकाश दो प्रेमी हैं। दोनों के प्रेम-स्वरूप वृक्ष और घास आदि प्राणियों की उत्पत्ति हुई। लेकिन दोनों को अद्य अभग हो जाना चाहिये नहीं तो उनके नन्हें-नन्हें प्यारे शिशुओं को विकास का अवसर न मिलेगा। एक बार पृथ्वी ने आकाश से मिलने का इरादा किया। लेकिन जब ही वह ऊपर की ओर जा रही थी, उसे सूर्य और चन्द्र दिखाई दे गये। उनसे सज्जित होकर वह बीच में सही सौट आई। उस समय उसका जितना हिस्सा ऊपर उठ रहा था, वह हमेशा के लिए धड़े-बड़े पहाड़ों के रूप में उदभूत गया।

चन्द्र-धनुष को एक पुस बताया गया है जिसे पार करके वधु अपने प्रियतम से मिलने उसके घर में प्रवेश करती है। कुछ लोगों ने इसे ऊपर बढ़ने का जीना कहा है। भगवान् इस पर बढ़कर चन्द्रसोक-निवासी अपनी प्रेयसी से मिलने

जाते हैं।

कहते हैं कि धारम्भ में हाथी अपने पंखों से आकाश में उड़ सकते थे, लेकिन उन्होंने धरों की छतों पर कूद-कूदकर उन्हें तोड़-फाड़ दिया। यह उत्पात देखकर देवताओं ने उनके पंख काट दिये।

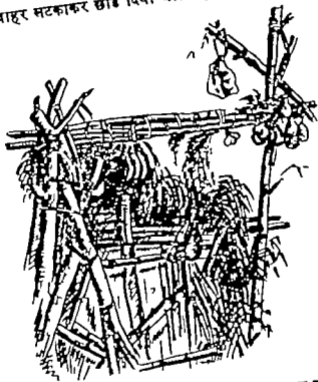
धर के सम्बन्ध में कहा है कि पहले वह भी धादमी ही था। लेकिन वह इतना काहिल और मूख था कि उस जङ्गल में भगा दिया गया। वहाँ पर वह अपनी टाँगों के बीच में मूखल दबाकर इधर-उधर दौड़ने लगा और वही मूखल उसकी पूँछ बन गई।

मृत्यु के संवत्स में भी इन जातियों की निम्न निम्न कल्पनाएँ हैं। कहते हैं कि मृत्यु जब इस दुनिया में अवतरित हुई तो केवल धादमी ही नहीं, पशु-पक्षी भी धर पर थे। लेकिन राग का यह बात पसन्द नहीं थी। पहल-पहल उसने मूर्खों को मृत्यु प्रदान की। मूर्खों ने उसे साँप को प्रदान किया। साँप को मरा हुआ देख अज्ञान मूर्खों ने इसे हम अपने पास रखेंगे तो हम सब मर जायेंगे। सोचकर अज्ञान ने वह मूख से मनुष्य को दे दी। अज्ञान मनुष्य ने भी मरने लगा। साँप का मरना बन्द हो गया वह कबल धरती पाँचमी बरसकर धरती परिवर्तन करने लगा।

मृत्यु को जङ्गल में छोड़ देने परिया में बहा देम जमीन में गाड़ देने और धरि में दे देना इन की सभी प्रयास धादि धासी जातियों में पायी जाता है। मृत्यु के साथ उमका धनुष-बाण, भासा कुदासी धनुष, पान-उम्बाधु और कीमती

भारत का सीमांत

भाम्बूपण भादि उसकी कन्न के अन्दर गाढ दिये जाते हैं, या उन्हें बाहर सटकाकर छाड़ दिया जाता है। क्योंकि भादिम



किमी भादिवासी की कन्न पर बहुत सा सामान लटका हुआ है।
जातियों का विश्वास है कि मनुष्य का मृत्युभोक में अपना
घर बसाने के लिए इन सब वस्तुओं की आवश्यकता होगी।

भादिवासी जातियों की समस्याएँ

चीनी साम्रज्य के पश्चात् नेफ़ के भादिवासियों की

समस्याओं पर संभारतापूर्वक विचार किया जा रहा है। सर्व प्रथम उनकी आर्थिक समस्या पर ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक उनके क्षेत्रों में पर्याप्त भ्रान्त पैदा नहीं होता और उन्हें पेटभर भोजन नहीं मिलता, जब तक वे स्वस्थ जीवन व्यतीत नहीं करते, समुचित शिक्षा प्राप्त नहीं करते उनके उद्योग धर्मों का पर्याप्त विकास नहीं होता, और आधुनिक विज्ञान का लाभ उन्हें नहीं मिलता, सब तक उनकी सर्वांगीण उन्नति नहीं हो सकती। जैसे एक घोर हम आदिवासियों को उपेक्षित नहीं छोड़ सकते वैसे ही उनके जीवन में एकदम अन्तिकारी परिवर्तन भी नहीं ला सकते, क्योंकि इससे हमारी प्रतिरक्षा की समस्याएँ बढ़ ही जाएँगी। आज आवश्यकता है कि साहसी ठाठ में रहने वाले हमारे अफसर लोग उन्हें अपने से कम सम्य, पिछड़े हुए, अथवा केवल सग्रहालय सजाने की वस्तु न समझ, उनकी बोनियों को सीखकर उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण धराबरी का बर्ताब करें। उनकी योग्यता और परम्परा के अनुकूल उनकी कला और संस्कृति का विकास होने पर ही मेका की ४ लाख जन-जातियों में जागृति उत्पन्न होगी और तब वे किसी भी आक्रमण का डटकर मुकायसा करने में समर्थ हो सकेंगी।

काश्मीर का गूढ़ रम्य प्रदेश—लद्दाख

२० अक्तूबर, १९६२ को चीनी सैनिकों ने लद्दाख के दौसतबेग घोल्बी पर आक्रमण कर दिया तथा सिरिजाप, हॉट



स्प्रिंग, रेजग-सा, बांग-सा, बर-सा और डेमचीक की थीकियों पर एक के बाद एक कब्जा करते चले गये। यहीं से लद्दाख के इतिहास में एक नया अध्याय खुलता है, तथा जम्मू और काश्मीर का यह उपेक्षित हिस्सा दुनिया के नक्शे में बमक

उठता है। महास भारतवर्ष का सबसे ऊँचा प्रदेश है जहाँ लोग बसते हैं। इसकी औसत ऊँचाई १२ हजार फुट है, कुछ श्रृंखलायें तो २२ हजार फुट तक घसी गई हैं जिन पर बड़े समय हवा के प्रतिशय भिनी होने के कारण बम फूलने लगता है। वाल्सिस्तान को भिसाकर महास का क्षेत्रफल लगभग ४६ हजार वर्गमील है, लेकिन बस्ती दूर-दूर होने के कारण जनसंख्या कुछ दो ही लाख है। स्त्रियों की संख्या दो तिहाई से कम नहीं। बहुपत्नीत्व प्रथा के कारण यहाँ बड़े भाई की ही शादी होती है, लेकिन उसकी पत्नी छोटे भाइयों की भी पत्नी कही जाती है, यद्यपि सन्तान बड़े भाई की ही मानी जाती है। यदि सन्तान पैदा न हो तो फिर से शादी करने की हवा लग नहीं। इससे यहाँ की जनसंख्या में वृद्धि न हो सकी।

हिम का प्रवेश

महास उत्तर में काराकोरम की श्रृंखलाओं पूर्व में तिब्बत, पश्चिम में काश्मीर, तथा दक्षिण में कांगड़ी भाटी से घिरा हुआ है। इस निम्न प्रदेश में बर्फ से ढंके बजर पहाड़ ही पहाड़ दिखाई देते हैं। चारों ओर निस्तब्धता का साम्राज्य है जिससे वृक्ष के पत्तों के गिरने तक की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। यहाँ दो ही ऋतुएं होती हैं, एक गर्मी और दूसरी सर्दी। गर्मी में बहुत गर्मी होती है रातभर गर्म हवा चलती रहती है, सर्दी में बहुत सर्दी पड़ती है पानी जमकर बर्फ बन जाता है। टमाटर, प्याज, संतरे आदि घास और फस पत्थर के गमान बड़े हो जाते हैं। इसी तरह प्राग पर पकाई हुई बोई बीज यदि कुछ

मिनट तक रबी रह जाये तो वह बहुत सस्त हो जाती है और तोड़ने से भी नहीं टूटती। मई, जून, जुलाई गर्मी के महीने होते हैं, बाकी नौ महीने सर्दी के हैं। वर्षा सामान्य रूप से कुल दो-तीन इंच होती है, इसलिये खेतों की सिंचाई मदी के पानी से की जाती है। वृष्टों को भी सींचकर बढ़ा किया जाता है। हाँ, हिमपात के कारण खेती-बारी को बहुत नुकसान हो जाता है। दिन रात बर्फ के ढंघड़ पसा करते हैं। नवम्बर के महीने में अत्यधिक बर्फ गिरने के कारण खोजी-सा से काश्मीर जाने का मार्ग बन्द हो जाता है। कोक्सर का भूखण्ड हुआ पुस बर्फ से इतना ढँक जाता है कि उसके ऊपर चसना ही असंभव है। सन् १८३८ में अत्यधिक हिमपात के कारण यहाँ के गाँव बर्फ में दब गये थे जिससे बहुत से लोगों की जान चली गई। चीनी भाषा में सदाख को ला-छन-पा अर्थात् हिम का प्रदेश कहते हैं। इसी सन् की चौथी सताब्दी में फाहियान जब यहाँ आया तो उसने इसी नाम से सदाख का उल्लेख किया है।

ममक की भौलें

सिन्धु यहाँ की मुख्य नदियों में से है जो इन्द्रनील मणि की धार जैसी निर्द्वन्द्व भाव से बहती है। नदियों पर सक्की, परमार, सोहे, और मारों के पृथक् बने हैं। कहीं सटकते हुए पुल भी हैं जिन्हें झूमकर पार करना पड़ता है। क्विनी ही यहाँ प्राकृतिक घाटियाँ हैं जो ६ हजार फुट से लेकर १७ हजार फुट तक ऊँची हैं। बांग चे-मो यहाँ की एक सुप्रसिद्ध घाटी है। सन्

१८६८ में यहाँ पानगौंग के घुमन्तु अपनी भेड़-बकरियाँ चराने आया करते थे, और पानजाल नदी पर पड़ाव डालकर रहते थे। सकड़ी और ईधन यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। यहाँ बहुत बड़ी-बड़ी भीसों हैं जिनमें खारा पानी भरा रहता है। दरमसस यहाँ के निवासियों के लिए नमक उतमा ही महत्वपूर्ण है जिसना कि जीवन। कहते हैं कहीं-कहीं समुद्र के अस्तित्व में भीठे पानी के करने देखने में आये हैं, इसी तरह यदि पहाड़ों के उष्ण शिखरों पर खारे पानी की भीसों मिस जायें तो आश्चर्य की क्या बात है? पानगौंग और स्पांगुर यहाँ की प्रसिद्ध भीसों हैं। पानगौंग का धर्म होता है 'सुविस्तृत गत'। सगमग १४००० फुट की ऊँचाई पर बनी हुई यह भीस ८५ मीस सम्वी और ३ मीस चौड़ी है। पानी इसका स्वच्छ और बहुत ही खारा है। स्पांगुर भीस से गधक की भाप निकलती रहती है जिससे सांस सेने मतकसीफ होती है। इस भीस के दोनों किनारों पर भारत सरकार की बिना अनुमति के ही चीनी सैनिकों ने सड़कें बना ली हैं। अन्य भीसों में ल्खोम्बोरिरि, योगजि-वम्मो आदि मुख्य हैं। भीसों के सिवाय किछमे ही गर्म पानी के सोते यहाँ बिटाई देते हैं। स्वाद और गंधविहीन इन सोतों के पानी में औषधियों के गुण पाये जाते हैं।

षष्ठ से डेके हुए बरें

लहासी भाषा में सा का अर्थ दर्ता होता है। यहाँ बहुत से बरें हैं जैसे रैजंग-सा, चांग-सा, पर-सा जोशी-सा, सामुंग-

सा घाटि । चांग-सा में बहुत जोर की बर्फ पड़ती है, तापमान दृश्य बिंदी से १० बिंदी कम हो जाता है, बहुत से दरें तो १२ फुट ऊंची बर्फ की तह से डूब जाते हैं । चांग-सा और जर-सा दरों में भारतीय अवान और चीनी सैनिकों में घनघोर युद्ध हुआ था ।

सती-बारी

सहास में घान की खेती होती है । जिन पहाड़ियों पर जंगल नहीं वहाँ खेतों में घान रोपे जाते हैं । मई महीने में किसान खेत जोतकर उसमें घान बो देते हैं । खेतों में पुरुषों की अपेक्षा सुन्दर स्त्रियों ही अधिक दिखाई देती हैं । वैसे भी पुरुषों से स्त्रियों की संख्या अधिक है । घान के असावा जो गेहूँ और मक्का की खेती होती है । फलों में अखरोट, खुवानी, घादाम और सेब, तथा साग-सब्जी में मटर, घासजम और सरसों आदि पैदा होते हैं ।

शीत ऋतु में, सदा हरे रहने वाले चीड़, देवदारु और भोजपत्र आदि के वृक्षों से इस पहाड़ी प्रदेश की घोमा बढ़ जाती है ।

ऊन का व्यापार

सहास अपनी भेड़ और बकरियों के ऊन के लिए दूर-दूर तक विख्यात है । ऊन से बड़िया सास-मुद्यासे बुने जाते हैं जो देश-विदेश में बड़ी कीमतों पर बिकते हैं । भेड़ों को बाहन के काम में भी लिया जाता है । कनिश्चम में ६ हजार भेड़ों के रेबड़

का उल्लेख किया है इन मंडलों पर घास-बुघाले, ऊन, खुशानी, गंधक, सुहागा आदि सामान सादर व्यापारी लोग यात्रा आ रहे थे। प्रागे धीर पीछे बसने वाले सिंह के समान भयानक कुत्त रेवड़ की रक्षा करते बसते हैं। घोड़े, बल, चमरी गाय, जंगली गधा, कस्तूरी भृगु खरगोश, तीतर धीर बतख आदि भी इस प्रदेश में पाये जाते हैं।

बौद्ध धर्म का केन्द्र

यहाँ बरत जाति के लोग निवास करते थे महाभारत में इनका उल्लेख है। सम्राट् अशोक के समय इस प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। अशोक व कनिष्क ने बौद्ध स्तूपों का यहाँ निर्माण कराया था। इसी सन् की चौथी शताब्दी में जब फाहियान ने इस प्रदेश की यात्रा की तो बौद्ध धर्म यहाँ फैला हुआ था। सन् ७३३ में सहास में सतितादित्य मुक्तदीप नामक हिन्दू राजा राज्य करता था।

सिन्धुत का शासन

८ वीं शताब्दी में सिन्धुत के राजा ने सहास पर शासन किया और इसे अपने अधिकार में कर लिया। सिन्धुत वालों का राज्य १०वीं शताब्दी तक चलता रहा, उसके बाद सहास सिन्धुत से अलग हो गया। यद्यपि सहासवासिया ने बहुत पहले ही बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था फिर भी सिन्धुत के प्रभाव के कारण सामाजिक के बौद्ध धर्म का यहाँ प्रचार हुआ। प्रागे बसकर तो सामा लोग भूस्वामी बन बैठे और सामारण किसान



सद्गाम के कतिपय निर्वासित नर-भारी

के पास ओतने के लिए अमीन तक न रह गई !

मुगल सेनाओं का अधिकार

१२ वीं शताब्दी में काश्मीर के राजा ने सदाख को अपने राज्य में मिला लिया, और उसकी सेनायें पूर्वी तिब्बत तक पहुँच गईं। सन् १५३१ तक सदाख मुसलमान बादशाहों के प्रभाव से मुक्त रहा लेकिन १७वीं शताब्दी में मुगल सेनाओं ने यहाँ पहुँचकर सूटमार की और सेह पर अधिकार कर लिया। सन् १६६५ में औरंगजेब खुद काश्मीर आया और उसने यहाँ के ग्याल्पो (राजा) को इस्लाम धरंगीकार करने के लिए बाध्य किया। सन् १६८१ में तिब्बत और मगोल के शासकों ने मिलकर जब सदाख को घेर लिया तो काश्मीर के मुसलिम गवर्नर ने सदाख की रक्षा के लिए सेना भेजी। दोनों तरफ से अमान लड़ाई हुई। अन्त में १६८४ में दोनों पक्षों में संधि हो गई तथा सदाख और तिब्बत की जो सीमायें पहले से पसी जाती थीं, उन्हें इस संधि में मान्य किया गया। सन् १८४२ में मुसाब सिंह के सेनापति जोरावरसिंह ने सदाख को जम्मू और काश्मीर राज्य में मिला लिया और तब से अब तक वह उसी रूप में बना आता है।

सदाख के सीमा प्रान्त की माय्यता

वास्तव में इसी सन् की १०वीं शताब्दी में जब स्कन्द इन्द्रनीम नामक राजा ने हिमालय के बाहर फैले हुए अपने राज्य को अपने तीन पुत्रों में बाँट दिया था, सभी सदाख का

सीमा प्रान्त भारत और तिब्बत की सरकारों द्वारा मान्य किया जा चुका था। तत्पश्चात् भारत और तिब्बत की सरकारों ने १६८३ में फिर से इस सीमा को मान्य किया। इसके बाद १८४१ में सेनापति जोरावरसिंह ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी। तिब्बत की सहायता के लिए चीन के सम्राट् ने सेनायें भर्जी। दोनों सेनाओं में जोरों का युद्ध हुआ। लेकिन इस समय १८४२ में दोनों पक्षों में जो संधि हुई उसमें भी पुरानी सीमाओं को ही स्वीकार किया गया। संधि पर हस्ताक्षर करने वालों में एक ओर से थी साखसाजी और थी साहुवहादुर राजा गुलाबसिंह तथा दूसरी ओर से चीन के सम्राट् और स्थास के लामा गुद मीजूद थे। १८५२ में काश्मीर क राजा औरदसाई लामा के बीच जो समझौता हुआ उसमें भी इन्ही सीमाओं को मान्य किया गया। चीन के इम्पीरियस कमिशनर द्वारा २० जनवरी, १८४७ को लिखे हुए पत्र में इसकी स्वीकृति का स्पष्ट उल्लेख है।

चीनी सरकार की प्रत्येकृति

इससे स्पष्ट है कि सन् १९५९ तक मद्रास और तिब्बत के सीमाप्रान्त के संबंध में किसी तरह का कोई विवाद नहीं था। २६ सितम्बर १९५९ को भारत के प्रधान मंत्री पंडित नह्रू ने चीन के प्रधानमंत्री चो-एन-साई को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने १६८४ की संधि का उल्लेख किया। चो-एन साई ने २६ दिसम्बर १९५९ के अपने पत्रोत्तर में इस संधि का निषेध नहीं किया। लेकिन इसके बाद अचानक ही २२ जुलाई,

१९६० के पत्र में चीनी सरकार ने इस सीमा के अस्तित्व को यह कहकर मेट दिया कि समकालीन तिब्बत की किताबों में इस संधि का उल्लेख ही नहीं मिलता। और १८४२ की संधि को यह कहकर उखाड़ा दिया गया कि यह संधि सीमाओं को निर्धारित करने के लिए नहीं थी इसमें तो केवल एक दूमरे पर आक्रमण न करने का इकरार किया गया था। लेकिन ध्यान रखने की बात है कि तिब्बत सरकार के २२ नवम्बर १९२१ के पत्र में उक्त सीमाओं को स्वीकार करते हुए भारत को आदवासन दिया गया है कि इस संधि में आक्रमणकारी चीनी तिब्बत की सरकार हस्तक्षेप न करेगी।

चीनी सरकार द्वारा सीमा-वृद्धि

सेप्टिम्बर १९६० में पीकिंग सरकार ने सीमा सम्बन्धी सभी प्रमाणों और दलीलों को अस्वीकार कर दिया, और धीरे-धीरे वह अपनी सीमा बढ़ानी यानी और आश्चर्य है कि इसका भारत सरकार को पता तक न चला! माघ, १९४६ में ३००० अमिकों की सहायता से चीनी सैनिकों ने सड़क बनाना आरम्भ किया और १८ महीनों में ८०० मील लम्बी सड़क बनाकर तयार कर ली, जिसने सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश को मिला दिया। २० अक्टूबर, १९६२ को एक साथ नेफा और काराकोरम दर्रे की तमहटी में १६,४०० फुट पर अवस्थित दौलतबेग घोल्डी पर आक्रमण कर चीन ने उस पर अधिकार कर लिया। २ अक्टूबर को भारतीय सेना ने इस ठाँव को खासी कर दिया। उसके बाद चीनियों ने कोंगका

घौर हॉट स्ट्रिम की रक्षा-धौकियों को हथिया लिया ।

ब्रूशुस पहाड़ का युद्ध

सेकिम सबसे घमासान युद्ध हुआ १४२३०० फुट ऊँचे ब्रूशुस पहाड़ पर । एक घोर कठोर प्रकृति पर विजय प्राप्त करना था, और दूसरी घोर प्रायुक्तिक घस्त्र-वस्त्रों से लस चीनी सनिकों से सोहा लेना था । इन दोनों ही शत्रुओं का मुकाबला करने के लिए असीम धर्म और मनोबल की आवश्यकता थी । सँकरी घाटी में बसा हुआ छोटी छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ होने के कारण यह पहाड़ अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है । यहाँ ब्रूशुस नाम का एक छोटा-सा गाँव है जिससे यह पहाड़ भी इसी नाम से कहा जाता है । रसद से जाने वाले हवाई जहाज के घड़द पर बमबारी करके चीनी उसे पराज करने और उस पर अधिकार कर लेने की बहुत कोशिश कर रहे थे । इसके सिवाय दुर्गति जाने वाली सड़क शत्रु की तोपों की सीमा में घावी थी इसलिए इसका उपयोग करना भी खतरा से खासी न था । इन तरह दुनिया से अलग पड़ हुए इस प्रदेश से केवल हेलिकॉप्टर द्वारा ही आपस और बीमार सिपाहियों को अन्यत्र ले जाया जा सकता था । रात्रि के समय यहाँ शून्य से भी ४० डिग्री कम तापमान हो जाता है जिससे पहाड़ों के भरने तक जमकर एक वन जाते हैं । ऐसी असह्य घात में जवान बर्फ की परत तोड़-तोड़कर उसमें से अपने टीन के डिब्बों में भोजन बनाने और पीने के लिए पानी इकट्ठा करते और भारी बन्दूकों को कंधों पर रखे हुए, बर्फ के बोझ से दबने लगे हुए बालू रास्तों का पार करते । कुहरे

घौर बर्फ के बीच, बर्फोंसे मयकर सर्दी में इतनी ऊँचाई पर साधारण आदमी के लिए जिन्दा रहना भी कठिन है। इसके सिवाय तिब्बत के पठार से चीन तक घाने-जाने के लिए मोटर की पक्की सड़कें बनी हुई हैं जबकि हमारी सेनाभा को पहाड़ी ढलानों पर रहकर काम करना पड़ता है। पहाड़ियों पर घौर उमके बीच-बीच में चारों धोर लड़्ड हैं जहाँ पहाड़ी सखर घौर टट्टू तक नहीं पहुँच सकते। ऐसे स्थानों पर हमारे सिपाहिया को रेंककर जाना पडता है। फिर नो हमारे जवान भासिरी दम तक दुश्मन का मुकावला करते रहे।

रसद पहुँचाने की कठिनाई

जसा कहा जा चुका है इन क्षेत्रों की सबसे बडी कठिनाई है सेना के पास जरूरी सामान पहुँचाना। यह सामान केवन हवाई जहाज के जरिए ही गिराया जा सकता है। कमी ता सब जगह बर्फ-ही-बर्फ छायी रहती है जिसके कारण कई-कई दिन तक हवाई जहाज का आवागमन बन्द रखना पडता है। बालक को अनगिनत सँकरी घाटियों में से होकर हवाई जहाज ले जाना पडता है। यदि जरा भी असावधानी हो जाये तो उसका घौर जहाज का नाम-निशान भी कहीं न मिले। इन्चुगिन डकोटा घौर केयर वाइल्ड पकेट हवाई जहाज १६ हजार फुट से मेकर २० हजार फुट की ऊँचाई तक ही उड सकते हैं, ऐसी हासत में यदि जहाज १०० फुट भी इधर-उधर हो जाए तो फिर हड्डी-पससी का कहीं पता न चले।

११,२०० फुट ऊँची सहाय की राजधानी सेह यहाँ का

मुख्य हवाई अड्डा है। १५ हजार फुट ऊँचा सखेर-पास अपनी रसद के लिए पूरी तरह से हवाई जहाज पर ही निर्भर रहता है। यदि सामान पहाड़ियों पर गिराना हो तो काफी ऊँचाई से गिराया जाता है। ऐसी हालत में यदि थोड़ा भी हवा का भौंका आ जाए, तो सब है यह सामान अपनी सेना के पास न पहुँचकर शत्रु-सेना के कैम्प में या बड़े-बड़े गड्ढों में पहुँच जाए। जिस स्थान पर सामान गिराना होता है वहाँ ठीक निधाना लगाने के लिए जहाज को अनेक चक्कर लगाने पड़ते हैं। बहुत से स्थान इतने सँकरे हैं कि सामान गिराकर जहाज का अल्डी से मुड़कर मोटना लगभग असंभव हो जाता है। पहले इन स्थानों में डकोटा उड़ाने की इजाजत नहीं थी, लेकिन युद्ध अल्प परिस्थिति के कारण, जान का सतरा उठाकर भी यह कार्य हाथ में लिया गया, धीरे-धीरे ही चालक एक महीने में १६२ घंटे उड़ान मारकर सेनाओं के पास जरूरी रसद पहुँचाते रहे। इसमें संदेह नहीं कि अज्ञान ही चीनी आक्रमण के कारण हमारी सेनाओं की जैसी बाह्य घेरी घेयारी न हो सकी, फिर भी हमारे जवानों ने अपनी जान की बाजी लगाकर सहाय की जो सड़ाई सड़ी है वह इतिहास में स्मरणीय रहेगी।

: ६

मैकमोहन रेखा



भारत और चीन के बीच की सीमा दो हजार मील से भी अधिक दूर में फली हुई है। इस सीमा के बहुत बड़े हिस्से में हिमालय पर्वत श्रृंखलाएँ हैं, जिन्हें दुनिया के इतिहास में आज तक किसी सेना ने पार नहीं किया था। भारत और चीन की सीमा के पश्चिमी भाग का कुछ हिस्सा तिब्बत के साथ और कुछ सिक्किम के साथ मिला हुआ है। इस सीमा के इस पार लद्दाख, जम्मू और काश्मीर राज्य का इलाका है। सीमा का बिचसा हिस्सा हिमाचल प्रदेश पंजाब और उत्तर प्रदेश से मिला हुआ है। इसमें बड़ाहोली (जिसे चीनी यूजे कहते हैं), दमबन, संगखामास और सप्यास क्षेत्र शामिल हैं। भारत-

चीन की सीमा का तोसरा पूर्वी हिस्सा नेफा प्रदेश से मिला है। यहाँ हिमालय पर्वत श्रृंखलाएँ सिक्किम और भूटान के साथ भारत की सीमा से लेकर बर्मा के साथ भारतीय सीमा तक फैली हुई हैं। पश्चिम से पूरु तक फैली हुई इसी रेखा का मैकमोहन रेखा कहा जाता है।

शिमला कान्फ्रेंस का समझौता

सर हैनरी मैकमोहन एक प्रसिद्ध अधिवक्ता थे जिन्होंने तिब्बत के दूत सान-बेन चाकरा के साथ पद्म-म्यबहार करके एक मसबिदा तयार किया जिसमें द्वारा परम्परागत तिब्बत के साथ उत्तर-पूर्वी सीमा को निर्धारित किया गया। मैकमोहन ने यह सीमा अपनी धोर से नहीं बनायी, उन्होंने इतिहास, प्रचलित परम्परा तथा वास्तविक स्थिति की बुनियाद पर जो सीमा सदियों से चली आ रही थी उस ही नक्शे पर खींच दिया। भारत चीन का सीमा सम्बन्धी यह समझौता ३ जुलाई, १९१४ को शिमला में सम्पन्न हुआ। चीनी प्रजातन्त्र राज्य का राष्ट्रपति और तिब्बत के दलाई लामा की भारत तिब्बती दूत सान-बेन चाकरा ने दाना नक्शा पर हस्ताक्षर करके उन पर मोहर लगा दी, तथा ब्रिटिश भारत सरकार की धोर से मैकमोहन ने इन नक्शों को मास विज्ञान से सिद्धित किया। इस प्रकार शिमला कान्फ्रेंस में भारत चीन और तिब्बत तीनों ने ही हिस्सा लिया था।

चीन और तिब्बत के सम्बन्ध

बात यह थी कि सन् १९१० में चीनी सेनाओं ने जब

तिब्बत पर आक्रमण कर ल्हासा पर अधिकार कर लिया तो उस समय चीन में मंचू राजाओं का राज्य ढाँवाडोल हो रहा था। १० अक्टूबर, १९११ को मंचू राजाओं का शास्त्रा हो गया और १ फरवरी, १९१२ को नानकिंग में डाक्टर सनयात सेन को प्रजातंत्रवादी चीन का प्रथम राष्ट्रपति घोषित किया गया। इस समय तिब्बत का दलाई लामा, जो भागकर सिक्किम चला गया था ल्हासा लौट आया तथा उसने अपनी राजनीतिक और आध्यात्मिक सत्ता को पुनः प्राप्त कर लिया। चीन की कमजोर परिस्थितियों का लाभ उठाकर चीनियों के विरुद्ध तिब्बत में विद्रोह मच गया और उनके प्रतिनिधियों को ल्हासा से भगा दिया गया। इस अवसर पर तिब्बत की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी गयी और यह अखंड स्वतंत्रता १९१२ से १९५० तक कायम रही। फिर भी चीन तिब्बत के ऊपर अपने आधिपत्य का दावा करता रहा।

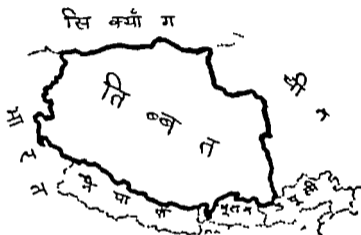
लेकिन चीन के साथ तिब्बत की संबंध नहीं हुई थी इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में तिब्बत की स्वतंत्रता मान्य नहीं की जा रही थी। ऐसी हानत में ७ अगस्त, १९१२ को भारत की ब्रिटिश सरकार ने चीनी सरकार को एक ममोरेण्डम (ज्ञापन) भेजा जिसमें एक ओर चीन और तिब्बत, तथा दूसरी ओर तिब्बत और भारत के बीच पूर्वकाल से बसी आती हुई शान्ति की नीति की बर्बादी की गयी। परिणामस्वरूप तिब्बत का प्रश्न हल करने के लिए तिब्बत, चीन और भारत के प्रतिनिधियों की कान्फेरेंस धिमसा में बुलाई गयी। बर्बादी के दौरान में तिब्बत को बाहरी और भीतरी सीमा में विभक्त

किया गया। भारतीय सीमा की घोर पड़ने वाली बाहरी सीमा में ल्हासा और आमडो को, तथा चीनी सीमा की घोर पड़ने वाली भीतरी सीमा में बिटोंग, मितांग तैबिएन्गु तथा पूर्वी तिब्बत के बहुत से हिस्से को सम्मिलित किया गया। कान्फ्रेंस में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व मकमोहन कर रहे थे उन्होंने तिब्बत की बाहरी सीमा में अपनी अतिरिक्त प्रादेशिक रियायत कायम रखते हुए, तिब्बत के ऊपर चीनी सरकार का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। तिब्बत के प्रति निधि ने तिब्बत के स्वायत्त शासन पर जोर देते हुए चीन का आधिपत्य मान लिया और चीन के प्रतिनिधि इवान बेन ने इस निणय को स्वीकार किया।

भारत और तिब्बत का सीमा सम्बन्धी प्रश्न

इस प्रकार देखा जाय तो भारत और तिब्बत के बीच सीमा सम्बन्धी मामला तय हो गया था लेकिन तिब्बत की बाहरी और भीतरी सीमा की रेखा को प्रामाण्य करते हुए चीनी सरकार ने चिमसा के समझौते पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। इस पर ब्रिटेन और तिब्बत ने घोषणा की कि जब तक चीनी सरकार इस संधि पर हस्ताक्षर न करे तब तक उसे संधि के बिद्योपाधिकार से वंचित रखा जाये। लेकिन फिर भी चीन ने न तो भारत-चीन सीमा सम्बन्धी कोई प्रश्न उठाया, और न उसने कान्फ्रेंस की मान्यता को ही चुनौती दी। लेकिन मकमोहन रेखा कायम रही और पिछले पचास वर्षों से निर्विवाद रूप से वह कायम है।

दुनिया की छत तिब्बत



भारत और तिब्बत के सम्बन्ध

भारत और तिब्बत के सम्बन्ध प्राचीनकाल से भले होते हैं। तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रवेश भारत से ही हुआ। स्वनामधन्य महापण्डित धातरक्षित और दीपकर श्रीज्ञान ने भारत से ही पहुँचकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। तिब्बती लिपि की वर्णमासा भारतीय देवनागरी वर्णमासा का ही रूपान्तर है। तिब्बत की चित्रकला और चित्पकला पर भी भारतीय कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। तिब्बत की यात्रा कीजिए तो वहाँ के घरों की दीवारों और खम्भों पर स्वस्तिक के चिह्न

दिसाई देंगे। वहाँ के मठों और मंदिरों में बौद्ध धाचार्थों के, भारत में सुप्त समझे जाने वाले अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के विख्यती अनुवाद, तथा नागार्जुन, धार्यदेव असंग, वसुबंधु, धर्मकीर्ति, कममघोस आदि बौद्ध धर्म के विगण पंडितों की जीवनियाँ सुरक्षित हैं। धरत्पन्द्र दास और पद्मभूषण महापंडित राहुस सांस्कृत्यामन यहाँ के बहुमूय्य इस्त-लिखित ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ लखवुरों पर सादकर भाय वे। राहुसजी की यह धनमोस निधि पटना के म्यूजियम में रखी हुई है। तिख्यतवासी धाचकल भी बोधगया, धारनाथ वाराणसी, वधामी, थावस्ती धादि बौद्ध तीर्थों की यात्रा करके धपने को धन्य मानते हैं। भारतवासी भी साढ़े पन्धीस हजार फुट ऊँधी हिमालय की ओटी पर स्थित शिवजी के निधासस्थान कैसास धाम की यात्रा कर पुण्य का सपावन करते हैं। लेकिन इतना सब होने पर भी तिख्यत के सम्बाध में हमें जितनी जानकारी होनी चाहिए, उतनी नहीं है। दुनिया का यह सबसे ऊँधा प्रदेश गुरू से ही रहस्य के गम में छिपा रहा है और यहाँ की राबधानी स्हासा को 'निषिद्ध नगर' कहा जाता रहा है।

भौगोलिक परिस्थिति

तिख्यत हिमाच्छादित पर्वतों और दुर्गम प्रदेशों से घिरा भूभाग है जो सपभाग ५ लाख वर्गमील में फैसा हुआ है। यह पूर्व से पश्चिम तक १२०० मील, उत्तर से दक्षिण तक ४,००० मील तथा समुद्रतल से १६००० फुट तक की ऊँचाई पर धसा है। इसके उत्तर में तिबियाँय, दक्षिण में नेपाल, भूटान, तिबिकम

घौर भारतीय पर्वत-मालाएँ, पश्चिम में सहाय्य और पूर्व में चीन हैं। तिब्बत के पूर्वीय प्रवेश में अनेक घाटियाँ हैं जिनके बीच-बीच में ऊँची पर्वत-शृंखलाएँ हैं। कलकत्ता करती हुई यहाँ अनेक नदियाँ बहती हैं। नीचे के हिस्से घने जंगलों से भान्छादित हैं जिनमें वर्षा होती रहती है, इसलिये मोग ऊपर के प्रदेशों में आकर १ हजार से १३ हजार फुट की ऊँचाई पर, निवास करते हैं। उत्तरी तिब्बत में चांगसांग का पठार है जिसमें सैकड़ों झीलें बहती हैं और इनके पारों घोर सार, सोडा और सुहाणा पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इस प्रदेश की सबसे बड़ी झील कोकोनोर है जो करीब डेढ़ हजार वर्ग-मील में बहती है।

सिंधु, सतलज और सांगपो (ब्रह्मपुत्र) यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। तीनों का उद्गम मानसरोवर झील के पास के प्रदेश से हुआ है। सिंधु और सतलज कमास पर्वत से निकल कर उत्तर-पश्चिम होती हुई दक्षिण की ओर बहती हैं और फिर पंजाब हाकर हिन्द महासागर में मिल जाती हैं।

भाबहवा

भाबहवा यहाँ की स्त्री है और खमीर बहुत उपजाऊ नहीं। मई-जून महीने में भी सहाय्य के पासपास के पर्वत श्रृंखला बर्फ से ढके रहते हैं इससे इस प्रदेश की सर्दी का अनुमान लगाया जा सकता है। हिमालय की दीवाल माग में घा जाने से हिन्द महासागर से बसी हुई मेघमासा स्वच्छन्दतापूर्वक यहाँ नहीं पहुँच पाती, इससे वर्षा अधिक नहीं होती, बर्फ ही

पड़ता रहता है। सर्बों की अधिकता के कारण वृक्ष आदि नहीं उगते। ऐसी हासत में अपनी आजीविका के लिए तिब्बतवासियों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है जिससे वे स्वभाव से कष्ट-सहिष्णु, शांत, शिष्ट कमाप्रेमी और अतिभिप्रिय हो गये हैं।

तिब्बत आदिम मानव का उत्पत्ति-स्थान

तिब्बत के लोग अपने देश को भोट कहते हैं। उनके अनुसार मानव-जाति की उत्पत्ति सबसे पहले तिब्बत में हुई थी। बोधिसत्व अशोकितेश्वर बानरराज के रूप में उत्पन्न हुए और एक राजसी के साथ उन्होंने विवाह कर लिया। उनके छह सन्तान हुईं। बानरराज ने अपनी सन्तानों को अपना सिमाकर पुष्ट किया जिससे उनके शरीर में वास भड़ गये और दुम छोटी होते-होते एक दिन गायब हो गयी।

धुमन्सु जातियाँ

सबप्रथम तिब्बतवासियों का परिचय हमें धुमन्सुओं के रूप में मिलता है जबकि वे चमरी गायों के बासों से बने तम्बुओं में रहा करते थे। ये लोग खासों और गड़रियों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते-फिरते थे। ऊन, चमरी गाय के बास, नमक और मक्खन की वे बिन्ही करते और इन चीजों के बदले जौ, गेहूँ, आम और कपड़ा लीते।

खेती-बारी और पशुपालन

तिब्बत में गेहूँ और जौ की खेती होती है, साम मर में

एक ही फसल कटती है। तिब्बत के लोग गेहूँ और जौ को रोटी नहीं बनाते, वे इन्हें मूककर पीस लेते हैं और उसका सत्न बनाकर खाते हैं, इसे चम्बा कहते हैं। पशुओं में भेड़ बकरी और चमरी गाय पासते हैं। इनका मांस खाते हैं और इनके बालों से ऊनी कपड़े तयार करते हैं। भेड़ की खाल का पोस्तीन बनाकर उसे पहनने के काम में लेते हैं। धनी भोग भड़िये, सोमड़ी और नेबले की खाल के वस्त्र बनाते हैं। चमरी गाय के दूध से मक्खन और उसके बालों से ठन्डू और रस्सी तयार की जाती है। चमरी गाय बोम्बा डान के काम में भी जाती है। जिन दुर्गम पहाड़ों पर हवा पतली होने के कारण टट्टू और सन्धर घसने में असमर्थ होते हैं, वहाँ चमरी गाय छिपकली की भाँति अपने कदम गड़ा-गड़ाकर ऊपर चढ़ती है। बरेलू जानवरों में तिब्बत के लोग कुत्ते पालने के शौकीन होते हैं।

तिब्बती चाय

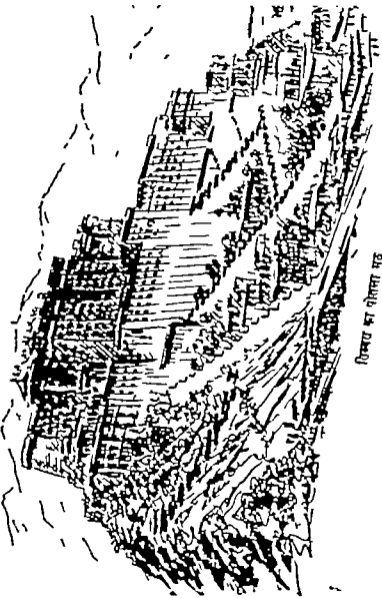
तिब्बत के लोग चाय बहुत पसन्द करते हैं। पहले चाय में साडा और नमक मिलाकर उसे गरम पानी में उबालते हैं फिर उसे काठ के एक गिलास में उड़ेल, उसमें मक्खन डालकर तब तक मथते हैं जब तक कि चाय का रस दूध-जसा सफ़ेद न हो जाये। फिर इसमें सत्न मिलाकर उसे बड़े घौक से खाते हैं। तिब्बत के लोग अपने प्रतिधि को सूखा मांस चाय और कच्ची सराब (तिब्बती में छंग) देकर बड़े प्रसन्न होते हैं।

गुलामों का समाज

पहले तिब्बत-भर की जमीन पर वहाँ के राजा का अधिकार था, और यह जमीन पट्टे पर किसानों को खेतने के लिए दी जाती थी, इसने सबसे किसान राजा को टैक्स देते थे। देखा जाय तो यहाँ के गुलामी समाज में जमीन-जायदाद और गुलामों के मासिक कृष ५ प्रतिशत सामन्त और अभिजात वर्ग के भोग ही, १५ प्रतिशत तिब्बत की जनता पर शासन करते पाये हैं। इनमें १० प्रतिशत किसान और ५ प्रतिशत गुलाम हैं, जिनकी ७० प्रतिशत कमाई अपने मासिकों की तिजोरियों में जाती है और ये विचारे सदा बर्ज के मार से दबे रहते हैं मानो किसी ने गले में पत्थर बाँध दिया हो। इन लोगों को किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं, और यदि कहीं जाने मनजाने मासिक की इच्छा के विरुद्ध कोई काम हो गया तो फिर खुदा ही मासिक है। किसी भी समय गुलाम के हाथ-पैर काट लिए जा सकते हैं और घाँसे फोड़कर उसे घघा बनाया जा सकता है। वास्तव में यहाँ की मेहनतकश जनता की गाड़ी कमाई का उपभोग करने का अधिकार केवल १०० कुलीन परिवारों के हाथ में रहा है और यहाँ की अधिकांश जमीन-जायदाद कुल इने-गिने २० परिवारों के पास रही है।

मठ-मन्दिर भी जमीन-जायदाद के मासिक

तिब्बत की आबादी लगभग ३० लाख है, जिनमें दस प्रतिशत सामा हैं। यहाँ छोटे-बड़े सब मिलाकर लगभग ३ हजार मठ (तिब्बती में गोम्पा) प्रथवा गुंवा) हैं जिनमें सकड़ों



विष्णु का पुराणा मठ

हजारों सामा निवास करते हैं। इनमें अधिकांश की उम्र षाठ वर्ष या इससे अधिक है और कुछ तो चार ही वर्ष के हैं। ये सामा योद्ध धर्म का पावन करने के साथ-साथ वनिज-व्यापार और व्याज-बट्टे से धन कमाते हैं और कुछ देश के शासन-सूत्र का संभालन भी करते हैं। कुसीन परिवारों के मठाधिकारी सामा जमीन आयदाद और गुलामों के मासिक हैं और साधारण परिवार के सामाओं से वे जमीन घिसने और सफाई करने आदि का काम इसी तरह कराते हैं जैसे कि गुलामों से कराया जाता है। मठाघोषों का अनुशासन भंग करने पर इन्हें मठों की कचहरियों में उपस्थित किया जाता है जोड़ों की सजा दी जाती है और गम्भीर अपराध होने पर जेल के सीकणों में बन्द कर दिया जाता है। खेती के साथ-साथ वे जमीन का संगम एक-तिहाई हिस्सा इन मठों के अधिकार में है। इसके सिवाय दाम-दलिया और उपहार आदि के द्वारा भी काफी आमदनी हो जाती है जिससे इन मठों के पास अपार धनराशि जुट जाती है। तिब्बत सरकार की ओर से सामाओं के भाजन वस्त्र आदि का प्रबन्ध रहसा है और मठों के भण्डार अनाज, धान, मक्खन और कपड़ों से बटे रहते हैं।

तिब्बत के कुछ प्रसिद्ध मठ

पोतना मठ ल्हासा का सबसे प्रसिद्ध मठ है जहाँ तिब्बत के धर्मगुरु दसाई सामा पीत चतु में निवास करते हैं। दुनिया की यह सबसे बड़ी इमारत मानी जाती है जिसमें वर्षों तक रहने के बाद भी यहाँ के अतरंग रहस्यों का पता नहीं लगता।

यह पहाड़ी पर बना हुआ एक भालीदान भवन है जो अपने प्राय में एक नगर जैसा लगता है। पोटसा प्रासाद के मध्य भाग में १३ मजिसें हैं जहाँ बड़े-बड़े भवन प्रायनागृह और ध्यान करने के लिए तहखाने, तथा खाद्य-पदार्थों के कोठार और सोने चाँदी और हीरे-जवाहरात के खजाने मौजूद हैं। कितने ही पुरान रिक्काड और ताडपत्र पर लिखे हुए हजारों दुलभ बीड ग्रथ यहीं सुरक्षित हैं। अनेक सामाग्रियों के चाँदी-सोन के स्तूप बने हुए हैं। इन स्तूपों में एक-से-एक कीमती मणि-मुक्ता आदि बहुमूल्य सामान गड़ा हुआ है। इसे भक्तों ने धन धमगुरुओं को भेंट चढ़ाया था। दलाई लामा यहीं से राष्ट्र के शासन-युक्त का सञ्चालन करते हैं इसलिए राष्ट्रीय विधानसभा और लोकसभा का बैठकें भी यहीं होती हैं।

मौरवुसिंग यहाँ का दूसरा शक्ति मठ है जहाँ दलाई लामा शीघ्र श्रुतु में रहते हैं। इसके अतिरिक्त, ड्रेपुग (=धान्य-राशि), सर और गाँडेन नामके बड़े-बड़े मठ हैं जिनमें हजारों लामा निवास करते हैं। इनके भोजन-वस्त्र और अभ्यसन-अभ्यासन का यहीं समुचित प्रबंध है।

तिब्बत में सम्राटों की परम्परा

१२७ ई० पू० में तिब्बत में म्या-त्रित्सेन-पो नाम के प्रथम सम्राट् ने राज्य किया। उसके बाद ४० सम्राट् और हुए। पहल २७ राजाओं के शासन-काल में बोन धर्म का प्रचार था यह धर्म धादू-टोन और मूठ प्रेत के बिदवास पर आधारित आदिम-कामीन जातियों का धर्म था। उत्पन्नात्

२८वें राजा के शासनकाल में तिब्बत में पहली बार बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ ।

बौद्ध धर्म का प्रभावक खोंग खन्-गम्-पो

ईसवी सन् की ७वीं शताब्दी में तिब्बत में खोंग खन्-गम् पो (६२०-६५० ई०) नाम का एक प्रसिद्ध सम्राट् हो गया है । उसने शासन-काल में भारत और चीन के साथ तिब्बत के सम्बन्धों में वृद्धि हुई जिससे तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ा । उसने युन मि साम भोट नाम के अपने मन्त्री को भारत में बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए भेजा । उस समय तक तिब्बती—जो तिब्बत-धर्मा परिवार की एक भाषा है—की कोई लिपि नहीं थी । यह मन्त्री देवनागरी लिपि की वर्ष मासा को अपने साथ लेकर तिब्बत लौटा और इस समय से तिब्बत के बौद्ध ग्रन्थ ४ स्वर और ३० व्यंजनों वाली लिपि में लिखे जाने लगे । इसके विवाय इस समय तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए घनेक मठ-मंदिरों की स्थापना हुई । स्थाया के सुप्रसिद्ध पोठसा मठ की नींव भी इसी काल में रखी गयी ।

चीन और नेपाल के साथ सम्बन्ध

सम्राट् खोंग खन्-गम्-पो एक दूरदर्शी उत्साही सम्राट् था । ६४१ ई० में उसने चांग वग की राजकुमारी वन चैन से विवाह किया जिससे तिब्बत और चीन में अनिच्छित सम्बन्ध स्थापित हो गये । पुरातन युद्ध की चंदन की एक मनोज्ञ मूर्ति

मध्य एशिया होते हुए भारत से चीन पहुँची थी, चीन की राजकुमारी को यह मूर्ति दहेज के रूप में मिली। बड़ी धूम-धाम से ल्हासा में बुद्ध की मूर्ति का प्रवेश कराया गया। तत्पश्चात् एक जसाधय पटवाकर उसके ऊपर एक सुन्दर मंदिर का निर्माण कराया और फिर बड़ ठाठ से मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई। १३०० वर्ष बीत जाने पर भी ओखग (=स्वामिगृह) नाम का यह प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर अपनी शान के साथ ज्यों-का-त्यों अवस्थित है। इसके सिवाय, और भी बहुत-सी वस्तुएँ चीन की राजकुमारी अपने साथ लायी थी, जिनमें रेशम के क्रीड़े, पनचक्की दस्तकारी का सामान कागज धाराब, और भोजन करने की तीसियाँ आदि मुख्य हैं।

सम्राट सोंग च्चु-गम्-यो ने चीन की मूर्ति नेपाल पर भी विजय प्राप्त कर राजा अशुवर्मा की राजकुमारी भूकुटी-देवी से विवाह किया। यह राजकुमारी भी अपने साथ भगवान बुद्ध की मूर्ति लेकर आयी, जिसकी धूमधाम से प्रतिष्ठा की गयी। इससे चीन तथा नेपाल के साथ तिब्बत के मित्रता-पूर्ण सम्बन्ध दृढ़ हो गये।

भारतीय पद्धतों को भ्रामत्रण

तिब्बत के ३७वें सम्राट सि सोंग-न्द-वृषन (७१६-८० ई०) के शासन-काल में तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भारत के धनक पद्धतों को भ्रामत्रित किया गया। उड़ीसा के राजबंश में उत्पन्न प्राप्त स्मरणीय आचार्य पद्मसंभव मंत्र तंत्र के बहुत बड़े विद्वान् थे। कहते हैं उन्होंने अपने मंत्र-यज्ञ से

तिब्बत के देवो-देवताओं को परास्त कर उन्हें बौद्ध धर्म के प्रसार में सहायक बनाया जिससे उनकी सूब ही प्रतिष्ठा बढ़ी । पद्म संभव को यहाँ गुरु रेम्पोछे नाम से सम्बोधित किया जाता है, और उनकी मूर्ति घर घर में दिखाई देती है ।

भाषाय शास्त्ररक्षित

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए जो स्थान सम्राट् घणोज के पुत्र महेन्द्र का है, वही स्थान तिब्बत में मालवा के परम पूज्य भाषार्य शास्त्ररक्षित का है । सम्राट् सि-सोंग-स्वे-वचन ने भारत में अपने बर्मबारी भ्रमकर अत्यन्त विनयपूर्वक शास्त्ररक्षित को तिब्बत आने के लिए आमन्त्रित किया । और तिब्बत के सम्राट् की प्राथना स्वीकार कर ७५ वर्ष की अवस्था में ७२४ ई० में, हिमालय के दुर्गम प्रदेशों को साँपकर बयोवृद्ध शास्त्ररक्षित ने जब तिब्बत में प्रवेश किया तो तिब्बतवासियों के हर्ष का पारावार न रहा । राजा की ओर से बड़े गाजे-बाजे के साथ उनका स्वागत किया गया । शास्त्ररक्षित धर्मोपदेश में अपना समय बिताते हुए तिब्बत में रहने लगे । कुछ समय बाद सम्राट् की सहायता सहासा के बक्षिण में, ब्रह्मपुत्र के तट पर उन्होंने सम्-ये नाम का बौद्ध बिहार भवनाना आरम्भ किया । ओदन्तपुरी के सुन्दर बिहार के नमूने पर ही इसका निर्माण आरम्भ हुआ था । १२ वर्ष के बाद जब यह ऐतिहासिक बिहारभवन तैयार हुआ तो तिब्बत वासी खुशी से फूले न समाये । ७४२ ई० में शास्त्ररक्षित ने पहली बार स्थानीय लोगों को भिक्षुधर्म में दीक्षित

किया । आचार्य धान्तरक्षित पूरे १०० वर्ष जीवित रहे । इस दीर्घकाल में उन्होंने अनेक शिष्य बनाये तथा कितने ही बौद्ध धर्म सम्बन्धी संस्कृत ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया । सम-ये बिहार के पत्य में बौद्ध धर्म के महान् प्रतिष्ठाता आचार्य धान्तरक्षित के पवित्र अवशेष आज भी मौजूद हैं जिनके दर्शन कर तिब्बतवासी अपना महोभाम्य मानते हैं ।

आचार्य दीपकर श्रीज्ञान

दीपकर श्रीज्ञान तिब्बत के दूसरे प्रतिष्ठित बौद्ध पंडित माने जाते हैं । तिब्बत के लोग इन्हें प्रतिष्ठा कहकर सम्बोधित करते हैं । धान्तरक्षित और दीपकर दोनों ही बिहार के रहने वाले थे । दीपकर बिष्णुशिला के महाविहार के एक युप्रसिद्ध विद्वान् थे । तिब्बत के राजा येधे-ग्रो ने जब देखा कि तिब्बत में बौद्ध धर्म का ह्रास होता जा रहा है तो उन्होंने अपने कुछ विश्वासपात्र कर्मचारियों को बहुत-सा सोना लेकर बिष्णुशिला भेजा और आचार्य दीपकर से तिब्बत धान की प्रार्थना की । पहले तो दीपकर ने इतनी दूर जाने की स्वीकृति नहीं दी, लेकिन राजा का अत्यन्त आग्रह देख संघ के स्वविर से कह सुनकर उन्होंने अनुमति प्राप्त की । १०४२ ई० में जब दीपकर तिब्बत पहुँचे तो वे ६१ पार कर चुके थे । तिब्बतवासी बौद्ध धर्म के प्रकाण्ड आचार्य के दर्शनों की बड़ी उत्सुकता से घाट ओह रहे थे । इसलिए आचार्य ने जब तिब्बत की भूमि पर पाँव रखा तो राजा उनकी भगवानी करने आया, और सब

धर्म के साथ उन्हें नगर में मिठा से गया। तिब्बत पहुँचकर दीपकर ने बोधिपद्मप्रदीप आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की और कितनों ही का तिब्बती भाषा में अनुबाद किया। सोम-तोन् दीपकर के परमप्रिय शिष्य थे, उन्होंने बौद्ध धर्म में तांत्रिक परम्परा को जन्म दिया। चोंग-ख-या इसी परम्परा के अनुयायी थे, जिन्होंने १३५७ ई० में पीली टापी (ग-सु-या) नाम के सामा सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित किया। आचार्य दीपकर १२ वर्ष तक तिब्बत में धर्म का प्रचार करते रहे। उत्पन्नात् ७३ वर्ष की अवस्था में प्रयाग के सारा मंदिर में उन्होंने अपने नरकर शरीर को छोड़ा। उनका मिक्षापात्र, कमण्डलु और शण्ड आज भी इस मंदिर की धोमा बदा रहा है और ये सब वस्तुएँ भारत और तिब्बत के मित्रता और सद्भावनापूर्ण सम्बन्धों की साक्षी दे रही हैं।

तिब्बत और चीन का संघर्ष

तिब्बत के ३६वें सम्राट के शासन-काल में पहली बार तिब्बत और चीन में समर्पण का सुमपात हुआ जिसमें चीन के कितने ही प्रांतों पर तिब्बत का अधिकार हो गया। उत्पन्नात् ४०वें सम्राट के शासन-काल (६६६ ई०) में फिर से संघर्ष हुआ और दोनों देशों की सीमा निर्धारित करने के लिए पत्थर का एक खम्भा गाड़ दिया गया।

बलाई साम्राज्यों का शासन

सम्राटों के शासन के बाद १३वीं शताब्दी से तिब्बत में

सामाधों का शासन प्रारम्भ होता है। इस समय छोग्यास-फाग-पा नाम कालामा चीन के सम्राट कुवलयक्षी का धार्मिक उपदेष्टा बनकर चीन गया। १२५० ई० में कुवलयक्षी ने तिब्बत को चीन में मिसाकर पेकिंग को अपनी राजधानी बनाया। चीन बप दादयहू सामा सीटकर आया और तिब्बत का प्रथम धर्मगुरु राजा कहलाया।

इस काल में सामाधर्म की बहुत उन्नति हुई जिसके फलस्वरूप अनेक छोटे-बड़े सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इन सम्प्रदायों में गे-सू-पा सम्प्रदाय सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ। दसाई सामा (दसाई मगोल भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है समुद्र दसाई सामा अर्थात् प्रज्ञा का समुद्र) और ट्शी सामा (जिसे पण्डित रिम्पो भी कहा जाता है) इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। १५वीं शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी तक इस सम्प्रदाय में पाँच दसाई सामा हो गये हैं। सो-नाम म्यान-त्सोपो तीसरा दसाई सामा था, जिसने अपने सम्प्रदाय में धर्म निरपेक्ष राजकीय सत्ता की नींव डाली, और इस समय से दसाई सामाधों की श्रृंखला प्रारम्भ हो गयी। १५७८ और १५८७ ई० में उसने मगोलिया की यात्रा की और वहाँ के सम्राट् ने उसे बय्यघर की पदवी से विभूषित किया। सत्पदवात् ५वें दसाई सामा (जन्म १६१७ ई०) ने १६४१ में मगोलिया के राजकुमार की सहायता से तिब्बत के राजा त्सान-पा को पद्मी से उतार दिया और स्वयं राज्य करने लगा। इसी समय से ट्शी सामा के पुनः जन्म धारण करने की परम्परा प्रचलित हुई।

तिब्बत का छठा दसाई सामा (जन्म १६८२ ई०) लोबांग

का निवासी था। यह स्थान आजकल भारत में नेफा (उपूसी) के अन्तर्गत कामेंग प्रदेस में आता है। सेकिन चीन के सम्राट ने उसे पदच्युत करके उसके स्थान पर सातवें दसाई सामा (अम्म १७०८ ई०) को बैठा दिया। यही एक ऐसा बसाई सामा हुआ जो विरक्त जीवन व्यतीत करने के लिए पहाड़ों और जंगलों में निकल आया करता था। इसीलिए इसके एक भिन्न में इसके हाथ में शासन का चिह्न पत्र न देकर, पुस्तक ही गई है। इस समय से चीनी मंत्री ल्हासा की कोर्ट में रहने लगा।

पाँचवें दसाई सामा की भाँति सेरह्यें दसाई सामा भी स्वयं विचारों के ये इसलिये सिम्बत में उनकी बहुत प्रतिष्ठा है। उन्होंने सिम्बत के स्वातंत्र्य की घोषणा की, और उनके समय में सिम्बत ने काफी उन्नति की। सबसे पहले सिम्बत की सेना का पुनः संगठन किया गया बिद्याचार्यों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए बिदेशों में भेजा गया, जल बिद्युत् की मशीनें लगायी गयीं उद्योग घरों की स्थापना हुई डाक और तार का प्रचार हुआ, होने वाली के मये सिक्के और कागज के शीट बन पड़े और सबसे बड़ी बात यह कि प्राचीन धार्मिक शिक्षा-प्रणाली को उन्होंने बरत दिया। दसाई सामा के पद पर अभिविक्त होने के बाद उन्होंने धर्म और राज्य की समस्याओं को हल करने के लिए बठिन परिश्रम किया, और बिद्यार्थी के बचत कर करने की योजनाएँ बनायीं।

बलाई सामा और टीसी सामाओं की परम्परा

तिब्बत के लोग दसाई सामा को बोधिसत्व भवलोकिश्वर (तिब्बती में छेनरेसि) का अवतार मानते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि दलाई सामा को निर्वाण प्राप्त करने का अधिकार मिला चुका है लेकिन फिर भी वे जनहित के लिए जन्म धारण करते हैं और उनका यह प्रयत्न तब तक जारी रहेगा जब तक कि संसार के समस्त प्राणियों को निर्वाण न मिल जाये। तिब्बत के दूसरे सुप्रसिद्ध सामा हैं टीसी सामा (पपछेन रिम्पो), इन्हें बोधिसत्व अमिताभ का अवतार माना जाता है। यद्यपि अमिताभ भवलोकिश्वर के धर्मगुरु माने गये हैं, फिर भी तिब्बत में टीसी सामा की अपेक्षा दसाई सामा का म्याम ही ऊँचा सम्मान जाता है। आबकस के टीसी सामा १०वें टीसी सामा हैं। उनकी अवस्था २२ वर्ष की है और आबकस के तिब्बत में दसाई सामा के स्थानापन्न होकर कार्य कर रहे हैं।

१४ वें दलाई सामा की खोज

१९३३ में जब तेरहवें दसाई सामा घुप-त्सेन म्यात्सपो स्वर्ग सिंघार गये तो चौदहवें दसाई सामा की खूँड़ मची। स्थासा के मोरबुसिंग नाम के घोष्य प्रासाद में दसाई सामा का स्वर्गवास होने के बाद उनके सब को दक्षिण की ओर मुँह करके स्थापित किया गया, लेकिन कहा जाता है कि किसी दक्षिण भ्रमत्कार से यह मुँह दक्षिण से पूर्व की ओर घूम गया।

इसका मतलब था कि भावी दसाई सामा की खोज पूर्व दिशा में होनी चाहिए ।

तिम्बतवासियों का विश्वास है कि मृत्यु के बाद दसाई सामा की आत्मा किसी ऐसे शिशु में अम्म धारण करती है जो उसकी मृत्यु के दो वर्ष बाद पैदा होने वाला हो । धार्मिक परम्परा के अनुसार मृत्यु के पश्चात् दसाई सामा ४६ दिन तक दक्षिण तिम्बठ की चो-कोर-ग्ये नाम की भूमि में धानम्ब-पूर्वक समय यापन करता है उसके बाद वे अम्म सेते हैं । लेकिन ऐसे परम भाग्यशाली शिशु का पता कैसे लगाया जाये ? सबसे पहले, राजा के कर्मचारी स्थासा से ६० मील दक्षिण-पूर्व में अवस्थित स्था-भोइ-सात्सो नाम की पवित्र भूमि पर पहुँचते हैं और यहाँ भूमि के निम्न जल में प्रतिबिम्बित दिव्य दृष्टि का संकेत या दसाई सामा की तलाश में निकल पड़ते हैं ।

उक्त भूमि का दिव्य संकेत पाकर, १६३५ ई० में राज-कर्मचारी भावी दसाई सामा की तलाश करते-करते तिम्बठ के उत्तर-पूर्व में अवस्थित उक्तसेर नाम के गाँव में पहुँचे । यहाँ दिव्य संकेतों के सहारे-सहारे वे एक किसान के छोटे से घर का सामना प्राये । पता लगा कि हाल ही में उस घर में किसी शिशु ने अम्म लिया है । राजा के कर्मचारियों ने घर के अंदर प्रवेश किया , नवजात शिशु के बड़े-बड़े कान, उठे हुए बंधे, घुँघरूदार भवें और उसकी हथेली पर धातु का चिह्न देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि यही दसाई सामा का अवतार होना चाहिये । उन्होंने मृतपूर्व दसाई सामा द्वारा उपयोग में

सी जाने बाभी मासा, घण्टी, छड़ी भादि वस्तुओं को घस्य घनेक वस्तुओं के साथ मिलाकर वासक के सामने रखा, और यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ कि वासक ने उनमें से दसाई सामा की ही चीजों को चुना। इस पर राजा के कमचारी अस्यन्त प्रसन्न हुए और चौदहवें दसाई सामा के पाये जाने की मुनादी करा दी गयी।

दसाई सामा का अभिषेक

दसाई सामा अब चार बय के हो गये तो १६३६ में अपने माँ-बाप और १६ भाई-बहिनों को छोड़कर वे बड़ी धूमधाम से ल्हासा भाये गये और पोतसा महल में विधि-विधानपूर्वक दसाई सामा के पव पर उनका अभिषेक हो गया। इस समय उन्हें सुवर्ण की एक बुद्ध मूर्ति और बौद्ध त्रिपिटक उपहार में दिये गये, और बौद्ध धर्म का प्रचार करते हुए उनसे दीर्घ-जीवी होने की कामना की गयी। धीरे-धीरे दसाई सामा बड़े हुए। ल्हासा के मठों में रहकर उन्होंने व्याकरण तर्क, धर्म-शास्त्र दर्शन, काव्य, आयुर्वेद ज्योतिष, सङ्गीत, नाट्य भादि की शिक्षा प्राप्त की और इसके पश्चात् पोतसा में रहते हुए वे राजकाज की देखभाल करने लगे। इस समय दसाई सामा की उम्र कुल १४ वर्ष की रही होगी।

तिब्बत में चीनी सेनाओं का प्रवेश

१ अक्टूबर, १९४६ को चीन में कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना होने के तीन महीने बाद, चीनी सरकार के राष्ट्रपति

माओत्से-सुङ्ग ने तिब्बत को 'साम्राज्यवादी आक्रमण' से मुक्त करने की घोषणा कर दी। अगस्त, १९५० में चीनी सेनाओं ने तिब्बत में प्रवेश किया, और चीनी सरकार ने तिब्बत के प्रश्न को धान्तिपूर्वक मिमतापूर्ण तरीके से सुलझाने तथा चीन भारत के सीमाप्राप्त को स्थिर करने की इच्छा व्यक्त की। भारत सरकार ने चीनी सरकार की इस इच्छा का स्वागत करते हुए कहा कि भारत सरकार तिब्बत के ऊपर चीन के प्राधिपत्य को अस्वीकार नहीं करती यद्यपि इसका वास्तविक निर्णय तो तिब्बत की जनता द्वारा ही किया जाना चाहिए, फिर भी उसे आशा है कि यह मामला धान्तिपूर्वक सुलझ जायेगा, तथा जिस स्वायत्त शासन का तिब्बत पिछले ४० वर्षों से उपयोग करता आ रहा है, वह शासन कायम रहेगा। इसके साथ ही यह भी कहा गया कि परम्परा से बनी आधी हुई भारत और तिब्बत के बीच की सीमा रेखा का उत्संभन न होना चाहिए।

७ अक्टूबर, १९५० को चीनी सेनाएँ तिब्बत में घालीं हो गयीं। भारत सरकार ने चीन की इस सैनिक कार्रवाई के सम्बन्ध में चीनी सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि इससे एक तो संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन के प्रवेश का प्रश्न खटाई में पड़ जायेगा, दूसरे इस कार्रवाई से भारत के सीमा प्राप्त पर अधान्ति और उपद्रव बढ़ने की संभावना है। लेकिन पेरिंग सरकार को भारत की यह सलाह पसन्द न आयी। उसने पसटकर उत्तर दिया कि भारत विदेशी प्रभाव में आकर ऐसा सोचने लगा है और इससे साहिर है कि वह तिब्बत में

चीन का विरोध करना चाहता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत सरकार पर यह दोषारोपण करना विस्तृत भी न्याय-संज्ञक नहीं था। इस सम्बन्ध में भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ७ दिसम्बर १९५० को लोकसभा में भाषण करते हुए बलवत् दिया कि इस मामले में तिब्बत की जनता की राय ही सर्वोपरि समझी जानी चाहिए, केवल कानूनी या ब्रह्मिक दलील कार्यकारी नहीं हो सकती, यद्यपि यह बात दूसरी है कि तिब्बत की जनता में अपने अधिकारों की मनवा सने की हिम्मत है या नहीं। चीन और तिब्बत के पुराने सम्बन्धों को देखते हुए, मौजूदा परिस्थिति में, इस समस्या का और कोई उचित हल हो भी क्या सकता था? इसके अलावा भारत चीन और तिब्बत के मामले में इसलिये भी कुछ करने में असमर्थ था कि उसने अपनी सारी शक्ति और साधन पञ्चवर्षीय योजनाओं को पूरा करने में लगा रखे थे। अस्तु, घटनाएँ वहीं घीघटा से दौड़ रही थीं। इस बीच २३ मई, १९५१ को तिब्बत के नेताओं को पेंकिंग आमंत्रित किया गया और पेंकिंग सरकार के १७ अधिकरण वाले सधि-पत्र पर मुहर लगा, उन्होंने सधि को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् सेनापति चांग चिन-शू के नेतृत्व में चीनी सेनाओं का तिब्बत की राजधानी ल्हासा पर अधिकार हो गया। इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हुआ।

भारत और चीन का समझौता

२९ अप्रैल, १९५४ को भारत और चीन के बीच व्यापक-

माओत्से-सुङ्ग ने तिब्बत को चिनिया के फसतस्वल्प, विटिप्त भाउ
 करने की घोषणा कर दी थी। तिब्बत में प्रवेश किया, २ - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 तिब्बत में प्रवेश किया, २ - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 की शान्तिपूर्वक मित्रतापूर्वक भारत में परित्याग कर दिया
 भारत के सीमाप्रान्त को - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 भारत सरकार ने चीनी - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 करते हुए कहा कि भारत - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 प्राधिपरम को प्रस्वीकार - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 निणय तो तिब्बत की जन - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 फिर भी उसे धाधा है वि - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 जायेगा, तथा जिस स्वायत्त - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में
 से उपभोग करता प्रसा था - इतिहास प्रादेशिक अधिकार तिब्बत में

ल्हासा का विद्रोह

समय ३८ वर्ष तक (१९१२ से लगाकर १९५० ई० तक) स्वायत्त शासन का उपभोग करने के पश्चात्, तिब्बत पर चीनी सेनाओं का जब अधिकार हो गया तो स्वाभाविक था कि तिब्बत की अनन्तता को यह पराधीनता अच्छी न लगी हो। ऐसी वृथा में सदियों से सामन्तवाद का झुंडा बने हुए तिब्बत में चीनी सरकार की चीनी साम्यवाद पर आधारित आधिक, राजनीतिक और समाजसुधार सम्बन्धी नयी नीति का विरोध जरूर हुआ होगा। अस्तु, मार्च १९५९ में ल्हासा में चीनी सेनाओं के खिलाफ एक विद्रोह खड़ा हो गया जिससे १७ मार्च को अपने प्रासाद से, वेध बंद कर दसाई सामा को भागना पड़ा।

भारत से तिब्बत जाने-जाने के मार्ग

हवाई जहाज के रास्ते ल्हासा से भारत का सीमाप्रान्त केवल १५० मील है, लेकिन पहाड़ियों को साँपकर जाने से यह ३०० मील पड़ता है। तिब्बत के लोग प्राचीनकाल से ही विदेशों के साथ व्यापार करते रहे हैं। वे लोग ऊन, नमक, बस्तूरी, रेशम और समूरी खास को अपने सक्करों पर सादकर पहाड़ी रास्तों से विदेशों में पहुँचते रहे हैं और असम से कपड़ा, सोहा और माछ आदि खरीदते रहे हैं। इसीलिए तिब्बत के दक्षिण भाग से भारत पूर्व भाग से चीन, और उत्तरी भाग से मंगोलिया जाने के व्यापारी-मार्ग अब भी बने

हुए हैं। धीनगर से सहाब की राजधानी सेह होते हुए, दक्षिण दिग्बत से शिगस्ते और स्हासा पहुँचने का मार्ग भी मौजूद है। बौद्ध भिक्षु इन्हीं सीहड़ मार्गों से होकर पैदल आते-जाते थे।

दसाई सामा भारत की ओर

दसाई सामा ने भी भारत जाने का यही मार्ग पकड़ा। लेकिन ३०० मील का दुगम मार्ग पार करना कोई आसान काम न था। भयानक पर्वत-श्रृंखलाओं नदियों घाटियों और बर्फ से आच्छादित ओठों को पार कर भागे बढ़ना था। इसके लिए कभी उन्हें पैदल चलना पड़ता कभी घोड़ और खम्बर की सवारी करनी पड़ती, और कभी खमरी गाय की आस की नाव में उबार होकर नदी-नाले पार करने पड़ते। रोज़ के २० मील का रास्ता तय करते लेकिन चलते चलते डर लगा रहता कि कहीं खोनी सिपाहियों ने देख लिया तो!

दसाई सामा ने चांग-सा दर्रे से होते हुए मेफा के घन्तगत कामेंग प्रवेश के तोवांग सी-सा और बोरमडिला होकर असम में प्रवेश किया। अपनी यात्रा में कितने ही स्थानों पर उन्हें १७ हजार फुट की ऊँचाई तक बढ़ना पड़ा। इन दुगम स्थानों में बर्फ ही बर्फ गिरता रहता है, बर्पा होती रहती है, या फिर घंघड़ पसा करते हैं। टट्ट ही एकमात्र सवारी है जिस पर बैठकर मुसाफिरी की आ सक्ती है। और कहीं तो टट्ट की सहायता के बिना ही, घुटनों तक के बूट पहन, पदम ही दसदस में से होकर गुजरना पड़ता है। मिट्टी इतनी चिबनी होती है कि स्पटने की आर्षका बनी रहती है। पानी की भीसें

जमकर बर्फ बन जाती हैं, और घास-फूस का कहीं नाम तक देखाई नहीं देता। हड्डियों को भेदने वाली सर्पों के मारे हाथ और पाँव की उँगलियाँ सुन्न हो जाती हैं, मर्बे बर्फ से जम जाती हैं, और यदि किसी रंगीन कपड़े या अपने सबे बालों से घाँसों को न डँका जाये तो बर्फ पर गिरने वाली सूरज की रोशनी की चकाचौंध से आदमी भ्रमा ही हो जाये।

इस तुंगम यात्रा में अकेले दलाई लामा ही नहीं थे, उनके साथ उनके दम के और भी लोग थे। फिर, पोटला का बहुमूल्य खजाना लिए सोने-चाँदी से सदे हुए सचर भी यात्रा कर रहे थे।

घालिर इतनी सन्धी मुसाफिरी के बाद ३१ मार्च, १९५९ को अब दलाई लामा ने भारत के सीमाप्रान्त में कदम रखा तो उनके दम में दम आया। दलाई ल मा के कुछ आदमी पहले से ही हिन्दुस्तान आ गये थे। दलाई लामा राजनीतिक शरण चाहते थे, और उन्हें वह मिस गयी। आजकल वे अपने अनुयायियों के साथ मसूरी-शाल पर निवास करते हैं।

चीनी सेनाओं का आक्रमण

भारत सरकार की न्यायपूर्ण उदार नीति

सन् १९४७ में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की, तभी से भारतीय जनता की इच्छा रही है कि चीन के साथ अपने मित्रतापूर्ण प्राचीन सम्बन्धों को पुनः स्थापित करे। अक्टूबर, १९४९ को चीन में कम्युनिस्ट सरकार बनी और वो महीने के अन्दर ही भारत ने उसे मान्यता प्रदान की। भारत सरकार इस बात के लिए भी सतत प्रयत्नशील रही कि अन्य राष्ट्रों की भाँति एशिया में खान्ति-रक्षा के लिए, चीन जैसे बड़े देश को संयुक्त राष्ट्रसंघ में उचित स्थान प्राप्त हो। तिब्बत के प्रश्न को लेकर भी पड़ोसी राष्ट्रों में मित्रतापूर्ण भावना बढ़ाने के लिए, और खान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने न्यायपूर्ण, उदार नीति से काम लिया। अगस्त, १९५४ में भारत सरकार ने व्यापारिक और पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने के हेतु तिब्बत के साथ जो सतनामा किया, उसमें तिब्बत में ब्रिटिश भारत के प्रादेशिक-अधिकारों का परित्याग कर दिया गया, और तिब्बत को चीन का प्रदेश मान लिया। इसके साथ ही, यातुम और म्यान्स में जो भारतीय सेना-रक्षकदल मौजूद था, उसे हटा लिया, तथा बाकलाना, तारपर, टैनीफोन सर्बिस और विश्रामास्थियों को

मामूली-सी कीमतों पर चीनी सरकार के हवाले कर दिया गया। पंचशीस का सिद्धान्त इसी संधि की प्रस्तावना के रूप में स्वीकार किया गया था। यह पहले कहा जा चुका है।

चीनी सरकार के नक्शे

भारत द्वारा मान्य भारत चीन की सीमा-पंक्ति से चीनी सरकार भसी प्रकार अलग थी, फिर भी उसने इस सम्बन्ध में कोई विवाद उपस्थित नहीं किया। भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने २० नवम्बर, १९५० को लोकसभा में घोषित किया कि मकमोहन रेखा हमारी सीमारेखा है और हम किसी को इस रेखा का अतिक्रमण न करने देंगे। सन् १९५१-१९५२ में भी तिब्बत के सम्बन्ध में भारत और चीनी सरकार की बातचीत हुई, लेकिन मकमोहन रेखा के सम्बन्ध में कोई प्रश्न चीन की ओर से नहीं उठाया गया। इससे पदधातु चीनी सरकार के नक्शों में करीब ३६ हजार वर्गमील मेफा का और करीब १२ हजार वर्गमील सहास्र के उत्तर-पूर्व का भाग चीन की सीमा में दिखाया गया तो भारत सरकार ने चीन के अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उत्तर में कहा गया कि ये नक्शे कुर्मिगतांग सरकार के पुराने नक्शों के आधार से तयार किये गये हैं, अतएव इन नक्शों पर आधारित अधिकारों को मानने की आवश्यकता नहीं। अक्टूबर, १९५४ में चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-साई ने इन नक्शों में सुधार करने का आश्वासन दिया।

भारतीय सीमांत पर चीन की छांव

लेकिन इस समय से चीनी सरकार ने सीमान्त के भारतीय प्रदेशों पर छांव गड़ाना शुरू कर दिया। सबसे पहले ७ जुलाई, १९५४ को चीन ने उत्तरप्रदेश के बड़ाहोती क्षेत्र में पहुंच देने वाली भारतीय सेनाओं की भीजूदगी का विरोध किया, और १९५५ में चीनी टुकड़ी ने यहाँ अपना कैंप बना लिया। १९५६ में पंजाब के स्फिटि क्षेत्र में चीनियों की एक टुकड़ी माप-जोख करने आई, और एक सशस्त्र टुकड़ी ने शिपकी परे को पार करके नीसांग-खघांग में प्रवेश किया। १९५७ में उन्होंने तिब्बत और सिक्किम को छोड़ने वाली १००० मील लम्बी सड़क बसाकर तयार कर ली, जो सड़क उत्तर-पूर्व सहाय के घनसाई चीन पठार से होकर गुजरती है। चीनी सरकार का कहना है कि १७ हजार फुट की ऊँचाई वाले सहाय के इस पूर्वी प्रदेश में तिब्बत और उइघर के निवासी गड़रिये ही अपनी भेड़ चराने आते रहे हैं भारत में कभी इसका उपयोग नहीं किया। लेकिन दस्तावेजों से यह सिद्ध होता है कि सहाय के निवासी घनसाई चीन और समीपवर्ती दूसरी जगहों में व्यापार करते, शिकार सेलने, जानवर चराने और ममक इकट्ठा करने जाया करते थे।

भारतीय और चीनी सीमा संबंधी विवाद का सूत्रपात

१९५६ में बाऊ-एन-साई भारत आये तो उन्होंने पंडित नेहरू से कहा कि चीन और बर्मा के बीच की मैकमोहन रेखा

को उन्होंने स्वीकार कर लिया है, और इसी तरह भारत चीन की सीमा को भी वे मान लेंगे। लेकिन इस आश्वासन के बावजूद, जसा कि कहा जा चुका है, १९५७ में चीन ने भक्साई चीन की सबक बनाकर तैयार कर सी। उसके बाद १९५८ में चीनी सनिकों ने सहाय के सुरनाक फिने को अधिकार में ले लिया भक्साई चीन में पहरा देने वाले भारतीय सनिक-दस को गिरफ्तार कर लिया, तथा उत्तरप्रदेश के संगभामास और सप भास प्रदेश में वे लोग घुस आये। इन्हीं दिनों चीन की एक सरकारी पत्रिका में चीन का मकसा प्रकाशित हुआ जिसमें निराप को छोड़कर नेफा के क्षेत्र चार भाग उत्तरप्रदेश के कुछ हिस्से, तथा सहाय के काफी बड़े क्षेत्र को चीनी सीमा में प्रवर्तित किया गया। चीनी सरकार का ध्यान इस भार आक्षेपित करने पर चाऊ-एन-साई न उत्तर दिया कि दोनों देशों के बीच की सीमा एक-दूसरे के परामश से तय की जानी चाहिए। इस तरह का उत्तर पहली बार चीन की ओर से दिया गया।

सुत्सन-सुत्सा विरोध

मार्च, १९५६ में तिब्बत में चीनी सेनाओं के विरुद्ध विद्रोह मचा, और वहाँ के दसाई सामा ने भागकर हिन्दुस्तान में शरण ली। समझ है दसाई सामा को शरण देने की बात चीनी सरकार के नेताओं को लटकी हो, लेकिन भारत जैसे प्रजातन्त्रवादी देश में उनके आगमन पर कैसे रोक लगाई जा सकती थी? ब्रिटेन ने भी स्वयंछ छोड़कर माने हुए कितने ही राजनीतिक नेताओं को पनाह दी है। उनी से मगवा है कि चीन ने सुत्सन-

सुस्ता भारत का विरोध शुरू कर दिया। जुलाई, १९५२ में चीनी टुकड़ी का एक सशस्त्र दल सहास में पश्चिमी पर्योग क्षेत्र में घुस आया और स्वांगुर में उसने अपना कम्प बना लिया। नेफा में वे खिन्नमाने में आ गये और सोंगजू चीनी पर उनका अधिकार हो गया। बाऊ-एन-साई ने घोषणा की कि सीमा-पक्षि के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हुआ और ५० हजार वर्गमील भारत की भूमि पर उन्होंने अपना अधिकार बसाया। लेकिन पब्लिस नेहरू ने उत्तर में कहा कि उत्तरी सीमा के प्रश्न पर बिचार-विनिमय करने की गुंजाइश इसलिए नहीं है कि भारत की यह सीमा इतिहास, भूगोल, रुढ़ि और परम्परा से सदियों से बनी आती है।

भारत और चीन के प्रधानमंत्रियों के प्रस्ताव

लेकिन भारत सरकार के इन हुस्के-फुस्के उत्तरों का चीनी सरकार पर कोई असर न हुआ और २० २१ अक्टूबर, १९५६ को चीनी सैनिक कोंगवा दर्रे में घुसकर ५० मील भारत की सीमा में आ पहुँचे। उन्होंने पहरा देने वाली भारत की पुलिस पर गोलीबारी करके भी आदमियों को खतम कर दिया और बंदियों को गिरफ्तार कर लिया। नवम्बर में बाऊ-एन-साई ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि उत्तर-पूरब में मैकमोहन रेखा से, तथा सहास में वास्तविक नियंत्रण की रेखा से दोनों देशों की सेनाएँ २० २० किलोमीटर पीछे की ओर हट जायें। लेकिन इसका मतलब हुआ कि चीनी सेनाएँ सोंगजू खासी करके वापस आनी जायें, और इसके बदले में भारतीय सेनाओं को अपना

ही प्रदेश छोड़कर पीछे हटना पड़े। कारण कि सहाय क्षेत्र में चीनी सेनाधर्मों ने भारत का बहुत-सा प्रवेश अपने अधिकार में कर लिया था, और इस क्षेत्र के अनेक हिस्सों में वे २० किलोमीटर से आगे भारत की सीमा में घुस आये थे। ऐसी हालत में, पब्लिक नेहरू ने दूसरा प्रस्ताव रखा कि पूर्वी और मध्य मार्गों में दोनों देशों को, पहूरा देने वाली अपनी सेनाधर्मों को न आने देना चाहिए, जिससे कि सीमाप्रान्त में दोनों में संघर्ष न हो जाये। इसके असावा, उनका सुझाव था कि चीनी सरकार सोंगभू से अपनी सेना हटा ले, तथा भारतीय सेना इस क्षेत्र पर अपना पुन अधिकार न करेगी। पब्लिक नेहरू के सम्बन्ध में पब्लिक नेहरू का कहना था कि भारतीय सेनाएँ सहाय क्षेत्र में उस रेखा तक पीछे हट जायें जिस पर चीन अपना अधिकार बसाता है और इसी तरह चीनी सेनाएँ भारतीय नक्षों में दिखाई हुई परम्परागत सीमा रेखा तक हटकर वापस आसो जायें।

समस्या का समाधान नहीं

वाङ्-एन-साई ने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया, और दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों की, दस दिन के अन्दर, चीन या रंगून में मीटिंग बुसाने का सुझाव पेश किया। पब्लिक नेहरू ने वाङ्-एन-साई को बातचीत करने के लिए दिल्ली आमंत्रित किया। अग्रेष में छह दिन तक दिल्ली में दोनों प्रधानमंत्रियों की बातचीत होती रही लेकिन समस्या का कोई समाधान न हो सका। फिर, दोनों सरकारों के अफसरों में भूत से विसम्बर,

१९६० तक पेकिंग, दिल्सी और रंगून में बातचीत हुआ और आश्चर्य है कि इस बीच में चीनी सेनाएँ भारत की सीमा में प्रवेश करती रहीं। नेफा के कामेंग प्रदेश में और महास के हॉट-स्प्रिंग क्षेत्र तक ये सेनाएँ बिना किसी रोकटोक के घुसती चली आयीं।

चीनी सरकारों को धोर से उपस्थित तथ्य

फरवरी, १९६१ में भारत सरकार ने पेकिंग, दिल्सी और रंगून की मीटिंगों की रिपोर्ट प्रकाशित की। इसमें नक्सों, वस्तावेजों यात्रियों के विवरणों और जनगणना आदिके आधार से दोनों देशों के बीच की सीमा निर्धारण के तथ्य उपस्थित किये गये। कुल मिलाकर भारतीय कामूनी दावे को सिद्ध करने के लिए भारत सरकार की धोर से ११४ सबूत पेश किये गये, जबकि चीन की सरकार केवल ४७ ही सबूत पेश कर सपौ। इसी प्रकार पश्चिमी मध्य और पूर्वी सीमा के संबंध में परम्परागत और प्रशासन संबंधी आधार को साबित करने के लिए भारत सरकार ने ११६ तथ्य और चीनी सरकार ने कुल १९२ तथ्य प्रस्तुत किये।

चीनी सैनिकों का दखल जारी

यह सब होता रहा और इस बीच में थड़ाथड़ा चीनी सैनिक भारतीय सीमा पर दखल करते गये। अगस्त, १९६१ में उन्होंने महास में ग्यांग्जू के निकट अपनी चौकियाँ और सड़कें बना लीं। अगस्त, १९६२ में चीन की धोर से भारतीय सेनाओं की

अपनी ही सीमा में उपस्थिति का विरोध किया गया और चीनी सैनिकों ने स्वयं ही समस्त पश्चिमी प्रदेश का पहरा देने की धमकी दी। मई, १९६२ में चीन ने पाकिस्तान के साथ सीमा सम्बन्धी समझौता कर लिया। जुलाई में उन्होंने गैलवान घाटी में भारतीय सरक्षण चौकी को घेर लिया, और सितम्बर में पूर्वी भाग की सीमा को सांभकर वे भारतीय सीमा में घुस आये।

विश्वासघाती हमला

२० अक्टूबर, १९६२ का दिन तो भारत के इतिहास में याद रहेगा जबकि चीनी सैनिकों ने बिना किसी पूर्व सूचना के सभी कायदे-कानूनों तथा मित्रता को धता वसाकर मेफा और सद्भाव पर विश्वासघाती हमला बोल दिया। और यह हमला अचानक ही ऐसे समय किया गया जबकि भारत सरकार की ओर से शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न जारी थे, और इस संबंध में बार्तालाप करने के लिए चीन को आमंत्रित किया गया था। चीन के इस हमले को देखकर भारत की जनता का सुन्व हृदय गुस्से से भर गया, और जगह-जगह इस आक्रमण के विरोध में सभाएँ होने लगीं।

चीन के सैनिकों की समस्या भारतीय सैनिकों से कई गुनी थी, और टिब्बी बम की भाँति भारतीय जवानों पर वे टूट पड़े थे। फिर, पिछले अनेक वर्षों के युद्ध का उन्हें अनुभव था, प्राधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से वे सैस थे, शीत ऋतु में हिमाच्छादित पर्वत मासाघों पर रहने का उन्हें अभ्यास था, पर्वत-मासाघों के दुर्गम

स्वार्थों पर पक्की सड़कें बनाकर उन स्वार्थों को घावागमन के योग्य उन्होंने बना लिया था। और सबसे बड़ी बात थी कि पूर्व तैयारी के साथ वे युद्ध के मोर्चे पर आकर बैठे थे जब कि भारत चीन को अपना एक पड़ोसी मित्र समझकर, ईमानदारी के साथ, शांतिपूर्ण तरीकों से सीमा-प्रांत के झगड़ों को निबटाने के लिए प्रयत्नशील हो रहा था। इस चीनी सैनिकों ने पहले तो गमवान घाटियों से लगाकर दीनतबेग घोस्डी तक की भारतीय रक्षा-धीकियों पर आक्रमण कर दिया और उसके पश्चात् एक-के-बाद-एक सिरिजाप क्षेत्र, कोंगमा हॉट-स्प्रिंग चांग-सा, जर-सा और डेमचोक की धीकियों पर वे अधिकार करते चले गये। १ नवम्बर से वे स्वामुर क्षेत्र के घासपास युद्ध की तयारियाँ करते रहे १८ नवम्बर को बुधूल पर दोनों सेनाओं में डटकर युद्ध हुआ, और रेजंग-सा पर चीनी सेना का अधिकार हो गया। सहास के साथ-साथ मेफा भी चीनी आक्रमण का शिकार हुआ तथा कामेंग सुवानसिरि, सियांग और सोहित के अनेक क्षत्रों पर चीन का कब्जा हो गया। इस प्रदेश में तोवांग बोमडिसा और बामोंग प्रादि क्षेत्रों की रक्षा के लिए घमासान युद्ध मचा।

युद्धबन्धी प्रस्ताव

मिदबासपाठ और छम-बपट से पूरा इस प्रकार के आक्रमण-कारी युद्ध की मिसाल इतिहास में कम ही मिलेगी। और, आक्रमण के चार दिन बाद २४ अक्टूबर को युद्धबन्दी के लिए चीनी सरकार की ओर से निम्नलिखित प्रस्ताव रखा गया—

(क) चीन भारत की सीमापट्टि का प्रदन शक्ति के साथ समझौते द्वारा छय किया जाना चाहिए, और तब तक दोनों देशों की सशस्त्र सेनाएँ चीन-भारत के समस्त सीमाप्रान्त पर, अपनी-अपनी वास्तविक नियंत्रित रेखा से २० किलोमीटर पीछे हट जायें

(ख) यदि भारत को यह प्रस्ताव मान्य हो तो चीनी सरकार सीमाप्रान्त के पूर्वी भाग में, पहरा देने वाले रक्षक-दल को वास्तविक नियंत्रित रेखा के उत्तर में पीछे हटाने को तैयार है। इसके साथ ही चीन और भारत को यह मजबूर करना पड़ेगा कि दोनों की सेनाएँ, सीमाप्रान्त के मध्य और पश्चिमी भागों में वास्तविक नियंत्रित रेखा—परम्परागत प्रचलित मान्य रेखा—का उल्लंघन नहीं करेगी

(ग) चीन भारत के सीमाप्रान्त सबधी प्रदन का मित्रता-पूण तरीके से सुलझाने के लिए एक बार फिर दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों में वार्तालाप हो।

चीनी सरकार को बात अस्वीकृत

भाष्य है कि भारतीय क्षेत्रों पर नृशंस आक्रमण करने के बाद भी चीन शक्ति और सुलह की बात करने को छयार था। वास्तव में यह मित्रतापूर्ण समझौते की बात नहीं एक प्रकार की बमकी थी और भारत इस बमकी में घाने वाला न था। भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने चीनी सरकार के इस प्रस्ताव को ठुकराते हुए चीनी सरकार से 'वास्तविक नियंत्रित रेखा' के सुन्दर्य में स्पष्टीकरण मांगा। 'क्या यह वह रेखा है जिसका

चीनी सरकार ने सितम्बर मास के आरम्भ से ही अपने आक्रमण द्वारा निर्माण किया है ?" पंडित नेहरू ने प्रश्न किया। इसका मतलब हुआ कि पहले तो अपने सैनिक आक्रमण द्वारा चीन ने ४० यथा ६० किलोमीटर भारत की भूमि पर अधिकार कर लिया, और अब वह अपनी 'वास्तविक नियंत्रित रेखा' से २० किलोमीटर पीछे हटकर शराफत का हाथ बढ़ाना चाहता है ! आक्रमणकारी की इस शर्मनाक बात को कोई कैसे स्वीकार कर सकता था ? ऐसी हानत में सीमा की पूर्ववत् स्थिति की रक्षा के लिए एक ही शर्त हो सकती थी कि ८ सितम्बर, १९६२ से पहले जहाँ चीनी मौजूद थे, वहीं वापस सौट जायें। वस्तुस्थिति यह है कि ८ सितम्बर, १९६२ के पूर्व चीन के किसी भी सैनिक ने सन् १९१४ की सीमा के अनुसार निर्धारित, पूर्वी भाग की भारत-चीन की सीमा का उत्सर्जन नहीं किया था। सबसे पहले ८ सितम्बर को इसका उत्सर्जन कर चीनी सेना ने डोसा की भारतीय चौकी पर कब्जा किया। इस बात का उत्स्फूर्त पंडित नेहरू ने अपने पत्रोत्तर में किया, और कहा कि चीनी सरकार द्वारा यह शर्त मंजूर कर लिए जाने के बाद ही भारत समझौते की बात में दिसपत्नी से सकता है। चीन ने जोध में आकर आक्रमण तो कर दिया था लेकिन उसकी समझ में न था रहा था कि अब पीछे फुटम कैसे हटायें।

समझौते की बातचीत

चीनी हमसे से भारत का सीमाप्रान्त हमारे वीरों के रक्त से खाल हो उठा था, और उधर शांति के प्रयत्न जारी थे। ४ नवम्बर, १९६२ के पत्र में बाऊ-एन-साई ने अपने ७ नवम्बर १९५६ के पत्र का हवाला देते हुए बताया कि चीन और भारत के बीच ७ नवम्बर, १९५६ की रेखा को ही वास्तविक नियंत्रित रेखा समझ जाये। चीनी सरकार के अनुसार पूर्वीय भाग में मुख्य रूप से यह रेखा 'तथाकथित मैकमोहन रेखा' से, तथा पश्चिमी और मध्य भागों में मुख्य रूप से परम्परागत प्रचलित रेखा से मेल जाती है। उपर्युक्त तीन भागों में विभक्त २४ अक्टूबर वाले चीनी प्रस्ताव का यही आधार है।

लेकिन भारत सरकार चीन की इस भूलभुलैया में घाने-वाली न थी। यह ऐसी ही बात हुई जैसे कोई कहे कि भाज के चार बल के तीन के बराबर हैं और बल के तीन परसों के दो के बराबर। मतलब यह कि २० अक्टूबर, १९६२ के चीनी धात्रमय के पदचादु स्थापित वास्तविक नियंत्रित रेखा को, ७ नवम्बर १९५६ की वास्तविक नियंत्रित रेखा से घमिन्न, तथा इस रेखा को दोनों देशों के बीच परम्परागत प्रचलित सीमा के तौर पर मान्य किया जा रहा था। लेकिन वस्तुस्थिति इससे बिल्कुल विपरीत थी।

पहले हम पश्चिमी भाग को लें। नवम्बर, १९५९ में पश्चिमी भाग की 'वास्तविक नियंत्रित रेखा' वस्तुतः कोई रेखा नहीं थी—१९५७ से ही भारतीय क्षेत्र में जोर-जबर्दस्ती से चीन ने अपनी कुछ अग्रहणें बना ली थीं, और इससे परम्परागत सीमा की स्थिति बदल गयी थी। जबर्दस्ती से कब्जा की हुई इन जगहों को सौटाने के लिए भारत चीन से बार-बार अनु रोध करता रहा लेकिन सौटाना तो दूर रहा, चीन ने पान-बूझकर = सितम्बर, १९६२ से एक और हमला करके भारतीय क्षेत्र के बहुत से स्थानों पर अधिकार कर लिया। यांग-ला दर्रा इस समय पहली बार पार किया गया। और अब वह 'उदार' बनकर प्रस्ताव कर रहा है जिससे कि पहले आक्रमण के समय कब्जा किये हुए स्थानों को तो वह अपने अधिकार में रख ही सके, साथ ही २० अक्टूबर, १९६२ के आक्रमण द्वारा अभिकृत तीन भागों में विभक्त उपर्युक्त प्रस्ताव पर आधारित समझौता करके अन्य स्थानों को भी हथिया ले। नवम्बर, १९५९ में चीनी चौकियाँ स्पामुर, कुरनाब किशा और कांगसा दर्रे में, तथा १९५७ में भारतीय प्रवेश में निर्माण की हुई अक्सार्ड चीन सड़क के किनारे बनी हुई थीं। इसके पश्चात् तीन वर्ष के भीतर—सितम्बर, १९६२ तक—चीन ने अनेक सैनिक सड़कें और चौकियाँ इस क्षेत्र में बना डालीं। ऐसी मामल में यदि ७ नवम्बर, १९५९ वाली रेखा वास्तविक नियंत्रित रेखा स्वीकार की जाये तो इसमें केवल १९५९ के बाद स्थापित की हुई चीनी चौकियाँ ही शामिल न होंगी, बल्कि इसमें अक्टूबर, १९६२ के आक्रमण तक जो अन्य ४० चौकियाँ भारतीय सीमा में

बनाई गई है। उन पर भी चीन का ही अधिकार समझा जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि ७ नवम्बर वाले सुझाव से चीन हमारे देश की और अधिक जमीन पर अधिकार कर लेना चाहता है। फिर, उपयुक्त चीनी प्रस्ताव को मान लेने पर भारत को अपनी ही सीमा में २० किलोमीटर (साढ़े बारह मील) पीछे हटना पड़ेगा और चीन के २० किलोमीटर पीछे हटने का मतलब है कि भारतीय सीमा के अन्दर ही चीन पीछे हटे (इस सीमा पर चीन अपना अधिकार खताता है), फिर भी चीनी सैनिक भारतीय क्षेत्र के १०० किलोमीटर (साढ़े बासठ मील) क्षेत्र में मौजूद ही रहेंगे। मतलब यह है कि २० अक्टूबर १९६२ तक चीन ने प्राक्-मण द्वारा जिन शौकियों पर कब्जा कर लिया था वे सब शौकियाँ तथा कुछ अन्य शौकियाँ चीन के अधिकार में चली जायेंगी, तथा भारतीय क्षेत्र में बनी हुई भारतीय रक्षक-शौकियाँ जिन्हें चीन अपनी कहता है खत्म कर दी जायेंगी, और फिर तो शौलतबेग झोल्डी, चुझूल और हानले आदि की मुख्य-मुख्य शौकियाँ भी न रहेंगी।

मध्य भाग की रेखा के सम्बन्ध में चीन के प्रधानमंत्री का कहना है कि 'वास्तविक नियंत्रित रेखा', चाहे वह ७ नवम्बर १९५६ की हो या अरब की हो मुख्य रूप में परम्परागत और प्रचलित रेखा से मेल खाती है। लेकिन यह कथन सर्वथा निराधार है। मुख्य हिमालय की उस विभाजक रेखा के दक्षिणी भाग में चीनी सरकार का कभी अधिकार नहीं रहा, यही रेखा इस मध्य भाग की परम्परागत सीमा है। १९५४

में तिब्बत के कुछ प्रफसर चीनी सेना के साथ बढ़ाहोती में घाये, लेकिन १९१८ में भारत और चीन में समझौता होने के बाद दोनों देशों की सेनाएँ यहाँ से हट गयीं। बाद में भारतीय पुलिस के अधिकारी यहाँ घासे-जाते रहे।

पूर्वी भाग में चीन अपनी सेनाओं को वास्तविक नियंत्रित रेखा के उत्तर में हटाने को तयार है। थाऊ-एन-साई के कथनानुसार यह रेखा मुख्य रूप में मकमोहन रेखा (चीनी सरकार द्वारा मामू मकमोहन रेखा—लेखक) से मेल खाती है। लेकिन वास्तविकता यह है कि चीन की पोजीशन यहाँ हमेशा से हिमाक्षय की शृंखलाओं के उत्तर में रही है तथा मकमोहन रेखा के सम्बन्ध में चीन की ओर से कभी विवाद उपस्थित नहीं किया गया। जब विभाजक सोमा के इस क्षेत्र के घासपास चीन के लोग न तो नवम्बर, १९५९ में और न उसके बाद ८ सितम्बर, १९६२ तक कभी रहे, सितम्बर, १९६२ में ही पहली बार उन्होंने भारत के इस प्रदेश पर आक्रमण किया। चीनी सरकार का प्रस्ताव है कि दोनों सेनाएँ मकमोहन रेखा के २० किलोमीटर पीछे हट जायें। इसका मतलब हुआ कि जिन दरों से चीन के सैनिक भारत में प्रवेश करते हैं, वे सब वरें (बांगला को मिलाकर) चीन के हाथ में पहुँच जायेंगे और भारतीय सेनाओं के दक्षिण की ओर २० किलोमीटर पीछे हटने से भारत का समस्त सीमाप्रांत नये आक्रमण के लिए खुल जायेगा। ८ सितम्बर, १९६२ को चीन ने जो आक्रमण किया, वह इसलिए ज्ञात हो सका कि सीमाप्राप्त के पास रसाक-बोकी मौजूद थी। जब

यदि दरों पर अथवा दरों के नजदीक सीमाप्रान्त की चौकियाँ न होंगी तो भविष्य में किसी धाक्रमण का पता लगना भी कठिन होगा ।

इस प्रकार भारत सरकार द्वारा चीन का तीन भागों में विभक्त उपयुक्त प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिये जाने पर चीन ने १५ नवम्बर से १६ नवम्बर के बीच अपना विश्वासघाती हमला और ठेक कर दिया, और फिर एकदम एकपक्षीय घोषणा कर दुनिया की घाँसों में झूल झोंकना बाहा कि २१ नवम्बर, १९६२ की रात के १२ बजे सड़ाई बढ़ कर दो जायेगी, तथा १ दिसम्बर, १९६२ से चीनी सीमाप्रान्त का रक्षक दल पश्चिमी और मध्य भागों में ७ नवम्बर, १९५६ के दिन मान्य चीन और भारत के बीच वास्तविक नियंत्रित रेखा के तथा पूर्वी भाग में गैर-कानूनी मैकमोहन रेखा के २० किलोमीटर पीछे हट जायेगा । इस घोषणा में वास्तविक नियंत्रित रेखा की ओर अनेक स्थानों पर जांच करने वाली चौकियाँ बनाने आदि का भी उल्लेख किया गया ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चीन की यह एकपक्षीय घोषणा शांति का प्रस्ताव न था, बल्कि एक धमकी थी जिसमें कहा गया था कि या तो भारत हमारी शर्त स्वीकार करे नहीं तो हम युद्ध बन्द नहीं करेंगे । बाहिर है कि अपनी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा के रक्षक किसी भी स्वात्माभिमानो राष्ट्र को यह शर्त स्वीकार नहीं हो सकती थी । हमने चीन की सीमा में जाकर सड़ाई नहीं की, बल्कि चीन ने सड़ाई करके हमारी जमीन पर कब्जा किया । चीन के उक्त प्रस्ताव तथा

युद्धविराम की एकपक्षीय घोषणा का अर्थ ही यह है कि उन क्षेत्रों पर भीतिक अधिकार प्राप्त कर लेना जो क्षेत्र ७ नवम्बर १९५६ को अथवा ८ सितम्बर, १९६२ के पूर्व कभी भी चीन के अधिकार में नहीं थे। और इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर भारत की सीमा सम्बन्धी मामूला बायम नहीं रह सकती थी। ऐसी हासत में चीन जब तक अपने हमसे द्वारा कब्जा किये हुए प्रदेश को वापस नहीं कर देता तब तक उससे समझौते की कोई बात नहीं की जा सकती।

१५ नवम्बर, १९६२ को चीन के प्रधानमन्त्री ने एशिया और अफ्रीका की कुछ सरकारों के पास चीनी मन्त्रे मित्रबाये, इनमें भी ७ नवम्बर, १९५६ की रेखा को ही वास्तविक नियंत्रित रेखा बताया गया। इन नक्शों में वे स्थान दिखाये गये हैं जहाँ कि चीनी सेनाएँ २० अक्टूबर, १९६२ क आक्रमण के बाद पहुँच गई थीं। २८ नवम्बर को चाऊ-एन-साई ने पंडित नेहरू को पत्र लिखा जिसमें २१ नवम्बर की घोषणा के सम्बन्ध में कहा गया कि चीनी सीमा रक्षक धारम रक्षा के हेतु मड़े हुए युद्ध में जहाँ तक पहुँच गये हैं, केबस उन्हीं क्षेत्रों को वे खाली न करेंगे, वस्कि ८ सितम्बर अथवा २० अक्टूबर, १९६२ को जहाँ से वे, उससे बहुत पीछे हट जायेंगे। लेकिन वास्तविकता यह है कि ७ सितम्बर, १९६२ को भारत और चीन के बीच सम्पर्क रेखा की अपेक्षा, जिस रेखा तक चीन ने वापस हटने का प्रस्ताव रखा है, उस रेखा के कुछ स्थान भारतीय सीमा के अन्दर ही पड़ते हैं। और यह वास्तविकता है कि जिस रेखा तक चीन ने पीछे हटने का प्रस्ताव किया है,

उस रेखा के अन्य स्थान चीनी सैनिकों को ७ सितम्बर, १९६२ की रेखा के पूब तक ले जायेंगे। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर भारत की उन अनेक रसाक-भौकियों पर चीन का अधिकार हो जायेगा, जिन पर उसने अपने २० अक्टूबर के हमले के समय कब्जा किया है। दूसरी ओर, उसे कहा जा चुका है, भारतीय सेनाओं को अपने ही प्रदेश में २० किलोमीटर पीछे हटना पड़ेगा, और यह ऐसा प्रदेश है जिसे स्वयं चीन ने भी भारत का प्रदेश माना है। मुख्य बात यह है कि यदि चीन द्वारा घोषित सफ़ाईबर्दी तथा चीनी सेनाओं के पीछे हटने के सम्बन्ध में भारत सरकार का अपनी राय कायम करना ही है तो सबसे पहले उस इस सेना आवश्यक होगा कि ७ नवम्बर १९५६ की अन्तर-राष्ट्रीय नियमित रेखा कौन-सी है, और स्पष्ट है कि इस रेखा के अपने असाक्षित अधिकारों के आधार में, चीनी सरकार द्वारा एकांगी रूप से निर्णय नहीं किया जा सकता।

अनावश्यक पत्र-व्यवहार